MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 3

वर्ष 5, अंक 18, अप्रैल-2019
चैत्र, वि. सं. 2076, ₹ 50

मंगल विमर्श त्रैमासिक

वादे वादे जायते तत्त्वबोधः

अंदर के पृष्ठों पर

6-19
वैदिक वाङ्मय में जीवन-मूल्यों की अवधारणा
डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

20-25
देश भक्ति, राष्ट्रीयता व अंतरराष्ट्रीयता
रवि देव गुप्ता

26-41
जल का क्या कोई विकल्प है?
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

कवर फोटो : तीर्थराज पुष्कर

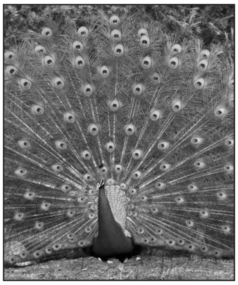

42-49
मन पाँखी की व्यथा
डॉ. शीला टावरी

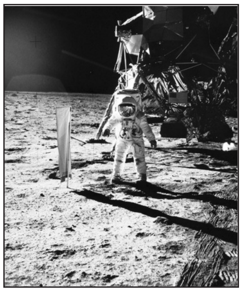

50-53
चंदा मामा की स्वतंत्रता खतरे में
डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

54-58
ग्रीष्म ऋतु में कैसा हो आहार-विहार
डॉ. सुनील आर्य

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संपादक
सुनील पांडेय

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक आदर्श गुप्ता द्वारा मंगल सृष्टि, सी-84, अहिंसा विहार, सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 के लिए प्रकाशित एवं एक्सेल प्रिंट, सी-36, एफ एफ कॉम्पलेक्स, झंडेवाला, नई दिल्ली द्वारा मुद्रित।

RNI
DELHIN/2015/59919
ISSN
2394-9929
ISBN
978-81-935561-6-0

फोन नं.
+91-9811166215
+91-11-27565018
+91-11-42633153
ई-मेल
mangalvimarsh@gmail.com
वेब साइट
www.mangalvimarsh.in

मंगल विमर्श पत्रिका में व्यक्त विचारों के लिए रचनाकार स्वयं उत्तरदायी हैं। संपादक, मुद्रक व प्रकाशक का उनसे सहमत होना अनिवार्य नहीं है।

सभी विवादों का न्याय क्षेत्र केवल दिल्ली होगा।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 4

अथ

कुंभ समष्टि चेतना का महापर्व है। शाश्वत आस्था का महाप्रस्फुटन है। पुण्यार्थियों की श्रद्धा का महारास है। सनातन संस्कृति के अनुरागियों में पुण्यार्जन की पावन आकांक्षा कितनी गहराई तक उत्कीर्ण है, इसका जीवंत प्रमाण है कुंभ का महापर्व; जिसमें पुण्य कर्म के लिए चारों दिशाओं से अनेकानेक गाँवों, दूरदराज के कस्बों, नामचीन नगरों तथा विदेश से जन सैलाब एक ही अभीप्सा से परिचालित हो उमड़ा चला आता है और वह अभीप्सा है मोक्ष की, निर्वाण की, कैवल्य की। कुंभ कहीं भी घटित हो– गंगा, क्षिप्रा अथवा गोदावरी के तट पर, मानवता का महापर्व वहीं लहराने लगता है। इस बार यह सौभाग्य प्रयागराज को प्राप्त है, जहाँ गंगा, यमुना व सरस्वती (विलुप्त) की त्रिवेणी के संगम स्थल पर श्रद्धालुओं का महामिलन हो रहा है।

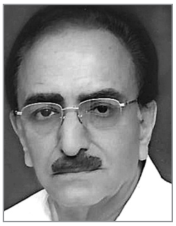

ओमीश परुथी
एसोसिएट प्रोफेसर (से.नि.)
प्रधान संपादक

मान्यता है कि देव-असुरों के संघर्ष में सागर प्रदत्त अमृत कलश से अमृत छलक कर जहाँ-जहाँ गिरा वहीं पर्व प्रकट हो गया। यह क्या मात्र पौराणिक है अथवा प्रामाणिक, नहीं कहा जा सकता; लेकिन करोड़ों की संख्या में आने वाले श्रद्धालुओं की आस्था अवश्य ही प्रामाणिक है, श्रद्धा अवश्य ही सच्ची है और विश्वास सर्वथा वास्तविक है। और आस्था से बढ़कर कुछ नहीं है। आस्था है तो मूर्ति ईश्वर की है, अन्यथा निष्प्राण पाषाण है। मानव का विश्वास ही उसमें प्राण प्रतिष्ठित करता है। साधक रामकृष्ण परमहंस ने कहा है-- 'विश्वास जीवन है, और अविश्वास मृत्यु।' मानव जीवन आस्था और विश्वास के सहारे ही चलता है।

आस्था न काँपें
मानव फिर मिट्टी का भी
देवता हो जाता है *-अज्ञेय*

गीता में भी योगेश्वर कृष्ण ने कहा है– ''जो मुझ में मन एकाग्र करके नित्ययुक्त रहकर श्रेष्ठ श्रद्धा से मेरी उपासना करते हैं वे मेरे मत से योगियों में अति उत्तम योगी हैं।'' इसी प्रकार 'स्कंद पुराण' में कहा गया है-

श्रद्धया भजतः पुंसः शिलापि फलदायिनी।
मूर्खोऽपि पूजितो भक्त्या गुरुर्भवति सिद्धिदः।।

अर्थात् श्रद्धापूर्वक पूजन करने वाले को पत्थर की मूर्ति भी फलदायक होती है। ऐसी श्रद्धा, आस्था व भक्तिभावना केवल भारत भू पर ही संभव है। विदेश में अन्य किसी भी स्थल पर आस्था का इतना विराट् व भव्य समागम नहीं होता। इतना विराट् कि सोमवती अमावस्या के अवसर पर तीन करोड़ से अधिक श्रद्धालु संगम पर स्नान करते हैं। इस प्रकार यह विश्व का सबसे बड़ा सांस्कृतिक व धार्मिक आयोजन है। कुंभ

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 5

वैश्विक पटल पर शांति व सामंजस्य का प्रतीक है। 2017 में यूनेस्को द्वारा कुंभ को 'मानवता की अमूर्त सांस्कृतिक विश्वास की प्रतिनिधि सूची' में मान्यता प्रदान की गई है। इस बार यह मेला इतने बड़े भूखंड पर आयोजित किया गया है, जो वेटिकेन सिटी (देश) के क्षेत्रफल से अधिक है। इसके सुचारु प्रबंधन के विषय में विदेशी इतने प्रभावित हैं कि वह स्वयं इसके दर्शनार्थ तो आते ही हैं, उनके विश्वविद्यालयों के अंतर्गत एमबीए आदि पाठ्यक्रमों में इसको अनुकरणीय मिसाल के रूप में पढ़ाया भी जाता है।

इस महापर्व का अयोजन प्राचीन काल से ही होता आया है। विद्वान इसे 300 ई. पू. मानते हैं। हो सकता तब यह इतना भव्य एवं विराट् न रहा हो। सम्राट हर्षवर्धन के द्वारा 75 दिन तक इसे सुचारु रूप से आयोजित किया गया। इतिहास में इसके प्रमाण मिलते हैं। इसके प्रारंभिक स्वरूप 'कल्पवास' का वर्णन तो पुराणों में भी मिलता है। 'पद्म पुराण' में महर्षि दतात्रेय ने 'कल्पवास' की सम्यक व्याख्या की है। माघ मास में गंगा के तट पर पूरा मास ब्रह्मचर्य का पालन करते व दान देते हुए कल्पवास करने का वर्णन मिलता है। इसी का बृहद् रूप कुंभ पर्व है। जो हमारी महान संस्कृति का भव्य दिग्दर्शन तो है ही, भौतिकतावादी आज के परिवेश में आस्था का शंखनाद भी है।

कुंभ के महापर्व में समष्टि के विराट् स्वरूप में व्यक्ति की इयता विलीन हो जाती है। मानवता के महासिंधु में वैयक्तिकता का कोई अर्थ नहीं। यहाँ पधारे लाखों श्रद्धालु एक ही सरोकार, एक ही धार्मिक विश्वास, एक ही अर्पण की भावना को साँझा करते हैं। व्यक्ति की पहचान, उसके चेहरे की विशिष्टता श्रद्धार्णव में समा जाती है। परिणामतः सम्मिलन, समन्वय, सामंजस्य के बृहद् रूप से साक्षात्कार होता है।

इस बार इस महापर्व का आयोजन अत्युत्तम ढंग से किया गया है। वहाँ से लौटने वाले तीर्थयात्रियों ने सुखद संतोष की अभिव्यंजना की है। विदेशी पर्यटक भी अचंभित हैं कि भारत जैसा ढीला-ढाला देश इतने बड़े पैमाने पर, इतनी दक्षता से किसी पर्व का आयोजन कर सकता है। इस बार हर प्रकार के तीर्थयात्रियों के स्तरानुसार सुचारु प्रबंधन किया गया। विदेशी अतिथियों व यहाँ के धनाढ्य वर्ग के लिए तीन सितारा सुविधाओं वाले टैंट कक्ष बनाए गए। सामान्यजन की सुविधा व आराम का भी पूरा ध्यान रखा गया। एक लाख से अधिक आधुनिक तकनीक के शौचालयों का प्रबंधन बेजोड़ है। त्रिवेणी का जल अपेक्षाकृत स्वच्छ है। पूरे पर्व में स्वच्छता के प्रति सफाई कर्मचारी पूर्णतया समर्पित व सजग थे। कानून व्यवस्था भी चाक-चौबंद थी। किसी अप्रिय घटना ने पर्व की भावधारा को दूषित नहीं किया। यह सर्वथा सराहनीय है। यह सजग संचालन का भी द्योतक है।

•

‘दो विश्व युद्धों की आग में झुलसने के बाद आज पूरा विश्व संयुक्त राष्ट्र के नेतृत्व में माननीव गरिमा, शांति, सद्‌भाव, सहयोग, सहअस्तित्व, समता व स्वतंत्रता की बात कर रहा है। विश्व आज ‘लोक कल्याण’ की जिस भावना से प्रेरित है वह भावना वैदिक विचारधारा का आधार है। विकास के मानदंड के रूप में आज जिस ‘प्रसन्नता सूचकांक’ (हैप्पीनेस इंडेक्स) की बात की जा रही है उस आनंद की प्राप्ति को वैदिक वाङ्मय में जीवन का परम गतंव्य माना गया है और इसे प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है ‘सत्यं, शिवम, सुंदरम्’। प्राणिमात्र के प्रति मैत्री भाव के अवधारणा वैदिक वाङ्मय की मानव समाज को अनुपम देन है। यह जीवन-मूल्य भारतीय जनजीवन में प्राणवायु की तरह रचे-बसे हुए हैं। वैदिक काल से लेकर आधुनिक हिंदी काव्यधारा में भी इन जीवन-मूल्यों की धारा अविरल रूप से प्रवाहमान है।

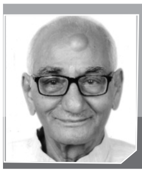

डॉ. भुवनेश्वर प्रसाद गुरुमैता

वैदिक वाङ्मय में जीवन-मूल्यों की अवधारणा और आधुनिक उत्कर्षकालीन हिंदी काव्य धारा

ह्रासोन्मुखी जीवन-मूल्यों के आधुनिक दौर में अपने साहित्य के माध्यम से युगों तक संरक्षित भारतीय जीवन-मूल्यों के विस्तृत विश्लेषण एवं वैचारिक मंथन से निश्चय ही दिव्य अमृत से भरा हुआ जीवन-घट मिल सकेगा, जिसके अंदर संजीवनी सुधा की सुगंधि भरी होगी; उसने भारत की माटी और परंपरा को तो सुगंधित किया ही होगा; संपूर्ण विश्व उसकी सुरभि से पुनः आप्यायित होगा। वैदिक वाङ्मय में अनुस्यूत जीवन-मूल्यों का अवगाहन करते समय स्वाभाविक रूप से हमें कुछ प्रश्नों के समाधान की आवश्यकता महसूस हो रही है।

भारतीय जीवन-मूल्य क्या हैं? भारतीय जीवन-मूल्य की परिभाषा क्या है? इन जीवन-मूल्यों का स्वरूप क्या है? इनके स्रोत और आधार क्या हैं? जीवन-मूल्यों का तत्त्व अथवा लक्ष्य क्या है? इन जीवन-मूल्यों का वर्गीकरण कैसे किया जाए? आधुनिक हिंदी साहित्य में उनकी अवधारणा और अवतारणा किस प्रकार परिलक्षित हुई है? इनका साहित्य, समाज, संस्कृति, शिक्षा, चरित्र निर्माण एवं व्यक्तित्व-सृजन से क्या संबंध है? प्रस्तुत निबंध को लिखते समय इसी प्रकार का ऊहापोह मेरे चिंतन,मनन, विवेचन और अनुसंधान का विषय बना हुआ है। देववाणी संस्कृत की वरद पुत्री होने के कारण हिंदी भाषा के विशाल कालजयी साहित्य से भी कतिपय रत्नकणों को चुनने का प्रयत्न

करूँगा, जिनके आलोक में विषय के स्पष्टीकरण की दृष्टि से समुचित प्रकाश मिल सकेगा।

मुझे यह स्वीकार करने में कदापि संकोच नहीं हो रहा है कि भारतीय जीवन-मूल्यों के विश्लेषण व उपस्थापन के इस सुविस्तृत आयोजन के सारस्वत यज्ञ में मैं स्वयं को सर्वथा अक्षम और अज्ञ समझ रहा हूँ। तथापि, सद्गुरुओं की कृपा, सत्संगति के प्रभाव तथा सुदीर्घकालीन ज्ञानार्जन एवं अनुभव के फलस्वरूप ऐसे समीचीन, सुरुचिपूर्ण तथा प्रासांगिक विषय पर अपने मंतव्य प्रकट करते हुए संतोष अनुभव कर रहा हूँ।

जिस समाज के जैसे मूल्य बोध होंगे, वैसी ही उनकी संस्कृति भी होगी। इस प्रकार मूल्यबोध यानी संस्कृति किसी समाज अथवा राष्ट्र की अपनी विशेषताओं का एक समूह है, जो उसके राष्ट्रीय व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण बनाता है और दूसरों से विलग भी। ये सांस्कृतिक विशेषताएँ मूल्यों के रूप में राष्ट्रीय व्यक्तित्व में निहित रहती हैं।

सर्वप्रथम भारतीय जीवनमूल्यों को परिभाषित करने की आवश्यकता है। 'भारतीय' अर्थात् भारत का।' अर्थात् यह प्रकाशमान, देदीप्यमान एवं प्रेरणादायिनी धरित्री। यहाँ के राष्ट्र-जीवन के सारे क्षेत्रों को आलोकित करने वाले भारतीय जीवन-दर्शन उस व्यावहारिक चिंतन को अत्यंत प्रभावी ढंग से साहित्य की विविध विधाओं में प्रतिपादित करनेवाले महान् प्रज्ञा पुरुषों का चिंतन। न जाने किस अनादिकाल के अज्ञात मुहूर्त्त से विशिष्ट भौगोलिक सीमा के अंतर्गत विविध ऐतिहासिक परिस्थितियों में हमारे महात्मा-मनीषियों एवं महर्षियों ने ज्ञान का आदान-प्रदान करने हेतु सारस्वत यज्ञ का अनुष्ठान किया था। यद्यपि उसका लक्ष्य वैश्विक संदर्भ में घनीभूत मानवीय संवेदनाओं को उद्वेलित और उद्भाषित करना था, तथापि तत्त्विक दृष्टि से यहाँ की उद्भावनाएँ अन्य क्षेत्रों से भिन्न रही हैं। अतएव उन्हें भारतीय कहना सर्वथा उपयुक्त है।

जीवन-मूल्य शब्द आज एक विशिष्ट अर्थ में प्रयुक्त हो रहा है। इसमें 'मूल्य' शब्द 'जीवन' अथवा 'मानव' आदि पदों के साथ उत्तर पद के रूप में संयुक्त होकर एक विशिष्ट अर्थ को अभिव्यंजित करता है। यह शब्द 'मूल' धातु के साथ यत् प्रत्यय के मेल से व्युत्पन्न है। मूल धातु 'मूल' का शाब्दिक अर्थ है प्रतिष्ठा। तदनुसार 'मूल' शब्द का अभिधार्थ हुआ 'प्रतिष्ठा के योग्य'। 'अमर कोश' के टीकाकार कृष्णमित्र ने 'मूल्य' शब्द का अर्थ किया है– मूल से न झुकने योग्य – मूले नानाग्याम् (अ.को. 2.9.79)। वृक्ष वा वनस्पति आदि की जड़ की भी संज्ञा 'मूल' है, क्योंकि यह उसे पृथ्वी अर्थात् मूलाधार से प्रतिष्ठित रखती है। इस मूल से निर्मित एक शब्द 'मूलधन' से यह तात्पर्य और भी स्पष्ट हो जाता है। इसका अर्थ है स्थायी धन। उसके ह्रास से चिंता होती है और वृद्धि से प्रसन्नता। चिंतन के क्रम में भी जहाँ से कोई मूल चिंतन आरंभ होता है, वह मूल विचार कहलाता है। अर्थात् वह अपने मूल से जुड़ा रहता है। इस प्रकार मूल्य की यह अनिवार्य शर्त है कि उसकी जड़ सुरक्षित रहे। जब यह अपनी जड़ से अलग होने लगता है, तो उसे हम अवमूल्यन के रूप में अभिहित करते हैं। जीवन और समाज के क्षेत्र में विचारों वा वस्तुओं के आदान-प्रदान की दृष्टि से ऐसा 'अवमूल्यन' यदा-कदा देखने को मिल जाता है।

अमरकोशकार ने इसका दूसरा वाचक शब्द 'वस्न' दिया है। उसका अर्थ है, जो उसमें निवास करता है–वस (धातु)+ न (प्रत्यय)। इस प्रकार मूल्य शब्द सदा मूल में निवास करता है। वैदिक साहित्य में जीवन के मूल्य की तुलना एक बहुमूल्य वृद्ध अश्व के साथ

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 9

की गई है, जो उस तथ्य का समर्थन करती है। तद्नुसार उस घृणित जुआरी के जीवन का कोई मूल्य उसी प्रकार नहीं; जिस प्रकार एक बहुमूल्य वृद्ध अश्व का (ऋ. 10.34.3)। इस उपमान से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस प्रकार बहुमूल्य अश्व भी वृद्ध होने पर अनुपयोगी सिद्ध होता है; उसी प्रकार मानव-जीवन में भी यदि मूल्यों अथवा गुणों का अभाव रहे तो वैसे जीवन का कोई मूल्य नहीं। आज जब हम भारतीय जीवनमूल्य की कल्पना करते हैं तो यह प्रश्न स्वाभाविक रूप से उठता है कि क्या जीवन मूल्य और भारतीय जीवन मूल्य एक है? भारतीय जीवन मूल्य और मानव जीवन-मूल्य भी क्या समान है?

मानव की बुद्धि हर देश में, हर युग में समान नहीं होती। इसलिए स्वाभाविक है कि मूल्यबोध में असमानता दीख पड़े। 'ऋग्वेद' के एक मंत्र[1] में इसी तथ्य को उद्भाषित करते हुए ऋषि का कथन है कि सभी आँखवाले हों, सभी कानवाले हों, सभी समान नामवाले हों; किंतु, मानसिक चिंतन के धरातल पर सभी समान हों; यह आवश्यक नहीं है। हर काल, हर देश और हर व्यक्ति के मूल्यबोध में समानता होना संभव नहीं। व्यक्ति से लेकर विश्व ब्रह्मांड क्या, परमात्मा के साथ भी मूल्यबोध के अलग-अलग क्षेत्र हैं। किसी विशेष परिधि के मूल्यबोध ही संस्कृति का रूप ग्रहण कर लेते हैं। जिस समाज के जैसे मूल्य बोध होंगे, वैसी ही उनकी संस्कृति भी होगी। इस प्रकार मूल्यबोध यानी संस्कृति किसी समाज अथवा राष्ट्र की अपनी विशेषताओं का एक समूह है, जो उसके राष्ट्रीय व्यक्तित्व को महत्त्वपूर्ण बनाता है और दूसरों से विलग भी। ये सांस्कृतिक विशेषताएँ मूल्यों के रूप में राष्ट्रीय व्यक्तित्व में निहित रहती हैं। साथ ही सांस्कृतिक उत्कर्ष के प्रतिमान के रूप में 'जातीय चेतना' में समाविष्ट होकर प्रेरित करती रहती हैं।

उसके साथ ही हमें यह भी ध्यान रखना चाहिए कि जातीय चेतना का अंग बन जाने पर भी उसका सदा एक ही रूप में बना रहना अनिवार्य नहीं है। कालांतर में सामाजिक रुचि के विकास के कारण कुछ नवीन उद्भावनाएँ भी उत्पन्न होती रहती हैं। प्रत्येक सभ्य देश में कुछ जागरूक विचारक अपनी मूलभूत जातीय चेतनाओं– धैर्य, साहस, उदारता, परोपकार, त्याग, सत्य, शुचिता आदि गुणों को अपना स्वभाव मानकर उनका संरक्षण करते हुए युगानुरूप नए मूल्यों को उद्भाषित करते रहते हैं। वे सदैव प्रगतिशील चेतना की पृष्ठभूमि में जीवन के संभाव्य मूल्यों का चिंतन करते रहते हैं तथा तलाश भी। परिणामस्वरूप वैश्विक संदर्भ में प्रभावी जीवन-सरणियों का निरूपण होता रहता है।

हमारे देश में श्रेय और प्रेय को अलग-अलग मार्ग मानते हुए भी दोनों में सामंजस्य बैठाया गया। हमारी जीवन-प्रणाली में अर्थ और धर्म तथा काम और मोक्ष के युग्म परस्पर विपरीत मूल्य के द्योतक हैं। तथापि, व्यास एवं कालिदास ने पुरुषार्थ चतुष्ट्य के रूप में इन्हें परस्पर एक दूसरे का पूरक बताकर प्रतिष्ठित किया तथा भारतीय जीवन मूल्य का अभिन्न अंग बना डाला।

आज अर्थ और काम-संज्ञक मूल्य धर्म और मोक्ष विषयक मूल्यबोध पर भारी नजर आ रहा है। वस्तुतः यह स्थिति हमारी महनीय संस्कृति के लिए आज घातक

भारत में श्रेय और प्रेय को अलग-अलग मार्ग मानते हुए भी दोनों में सामंजस्य बैठाया गया। हमारी जीवन-प्रणाली में अर्थ और धर्म तथा काम और मोक्ष के युग्म परस्पर विपरीत मूल्य के द्योतक हैं। तथापि, व्यास एवं कालिदास ने पुरुषार्थ चतुष्ट्य के रूप में इन्हें परस्पर एक दूसरे का पूरक बताकर प्रतिष्ठित किया तथा भारतीय जीवन मूल्य का अभिन्न अंग बना डाला।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 10

है। हमारी संस्कृति में तो काम उसी मात्रा तक आवश्यक है, जहाँ तक धर्म के संपादन में सहायक हो। अर्थ का भी प्रयोजन कौटिल्य की दृष्टि से तभी तक सार्थक है, जहाँ तक वह धर्म के साधन के रूप में अधिग्रहित हो। अर्थ और काम जब साधना न बनकर साध्य बन जाए तो भारतीय जीवन-मूल्यों के अनुरूप नहीं होगा।

भारतीय जीवनमूल्यों में धर्म को दृढ़तापूर्वक अंगीकार किया गया है; क्योंकि धर्म ने सारी प्रजा को धारण किया हैः–

'धारणाद् धर्ममित्याहुर्धर्मों धारयते प्रजाः'।[2]

(महाभारत कर्ण पर्व, 69.58)

मनु महाराज ने मनुष्य मात्र के लिए आचरण योग्य धर्म के दस अंग बताए हैं; जिनको कालांतर में स्मृति और पुराणों ने वर्गीकृत, परिभाषित और विवेचित किया, जो आज भी प्रतिष्ठित हैं :–

'धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिंद्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम् ।।'[3]

(मनुस्मृति, 6.92)

भारतीय वाड्मय में जीवन-यात्रा के प्रसंग में सत्य, शिव और सुंदर के माध्यम से अपने चरम गंतव्य आनंदमय स्थिति को प्राप्त करना बताया गया है, जो पश्चिम के विद्वानों को भी मान्य हैं।[4] हमारे यहाँ नैतिकता का चरम लक्ष्य 'सुख' है।[5] 'ऋग्वेद' की अधिकांश प्रार्थनाएँ सामान्य सुख एवं शांति की कामना हेतु हैं।[6] जीवन में बहुविध संपन्नता के लिए रोगों की शांति, शत्रु के विनाश, दरिद्रता एवं पाप से मुक्ति की कामनाएँ की गई हैं तथा 'शरद; शतम्' एवं अमृतत्व की प्राप्ति की आकांक्षा व्यक्त की गई है *(अथर्व. 19.67.1)।*

'ऋग्वेद' में नैतिक मूल्यों का अधिष्ठता 'ऋत' को सर्वोच्च स्थान दिया गया है। 'ऋत' के अनुसार चलना ही व्रत है (ऋ. 3.4.1)। 'ऋत' का पंथ दुःखों से पार होने के लिए अच्छा है (1.46.11) ऋत के अनुसार चलना ही प्रधान ऋग्वैदिक सदाचार था। विद्वानों के अनुसार मनु का दस लक्षणयुक्त धर्म भी उसी के आधार पर विकसित हुआ था।[7]

'ऋग्वेद' के अनुसार सत्य भी ऋत के समान ही तप से पैदा हुए हैं।[8] संसार को यदि ऋत चलाता है तो मानव जीवन को सत्य। कष्ट सहकर भी मनुष्य को सत्य के मार्ग पर दृढ़ रहना चाहिए।[9] सातवलेकर जी के मत से भारतीय जीवन-मूल्यों के ये दोनों ही तत्त्व मानव के व्यवहार में आने चाहिएँ। ऋत और सत्य का मूल यौगिक भाव है – प्रगति और अस्तित्व।[10]

'अहिंसा' उल्लेखनीय वैदिक आचारों में प्रमुख है। ऋग्वेद में अहिंसा भावना को भारतीय जीवन-मूल्य के रूप में मान्यता दी गई है।[11] मंत्रों में हिंसकों के विनाश

भारतीय वाड्मय में जीवन-यात्रा के प्रसंग में सत्य, शिव और सुंदर के माध्यम से अपने चरम गंतव्य आनंदमय स्थिति को प्राप्त करना बताया गया है, जो पश्चिम के विद्वानों को भी मान्य हैं। हमारे यहाँ नैतिकता का चरम लक्ष्य 'सुख' है। 'ऋग्वेद' की अधिकांश प्रार्थनाएँ सामान्य सुख एवं शांति की कामना हेतु हैं। जीवन में बहुविध संपन्नता के लिए रोगों की शांति, शत्रु के विनाश, दरिद्रता एवं पाप से मुक्ति की कामनाएँ की गई हैं तथा 'शरद; शतम्' एवं अमृतत्व की प्राप्ति की आकांक्षा व्यक्त की गई है।

और अहिंसा की सुरक्षा की कामनाएँ व्यक्त की गई हैं।

वेद में सब प्राणियों को मित्रवत् देखने की अभिलाषा व्यक्त की गई है। प्राणिमात्र के लिए कामना है कि सब प्राणी मुझे मित्र की दृष्टि से देखें। मैं सब प्राणियों को मित्र की दृष्टि से देखूँ।[12]

वैदिक मंत्रों में स्वाभाविक रूप से एक-दूसरे के प्रति अभय की भावना व्यक्त की गई है।[13] समानता, स्वतंत्रता और स्वावलंबन निर्भयता से ही प्राप्त कर सकते हैं।

'धी', मेधा या विवेक-बुद्धि ही जीवन को सर्वश्रेष्ठ बनाती है। अतएव श्रेष्ठ जीवन जीने के लिए सविता देव से प्रज्ञा को प्रेरित करने की प्रार्थना की गई है।[14] वेदों में दानशीलता और दाता की महिमा का सर्वत्र बखान किया गया है। अग्निदेवता से प्रार्थना की गई है कि कंजूसी (अदिति) से रक्षा करें (ऋ. 4.2.11)।

सदाचार के क्षेत्र में अंतःकरण की पवित्रता को महत्त्व दिया गया है। विद्या मनुष्य को पवित्र करती है (ऋ. 1.3.10)। वैदिक मान्यता है कि जहाँ विद्या है, वहीं पर सुख है। बिना परिश्रम के देवताओं से मित्रता नहीं होती – 'न ऋते श्रान्तस्व सख्याय देवाः' (ऋ. 4.33.11)। 'ऋग्वेद' का संज्ञानम् सूक्त (ऋ. 10.191) समष्टि-भावना का प्रचारक है। उसमें सबको सामंजस्य की प्रेरणा मिलती है। सौहार्द का प्रतिपादन है। सहकारिता, सहयोग, सहभोज, सहपान, समचित्तता, अविद्वेष, कल्याण भावना आदि समता भावनाओं का इन मंत्रों में विचार किया गया है, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन-मूल्यों की मानवता की देन हैं।

जीवनमूल्यों में श्रेष्ठता की प्राप्ति के लिए माधुर्य गुण को अपनाना श्रेयस्कर समझा गया है। वाणी की मधुरता जीवन को सुख और शुभ की प्राप्ति कराती है।

लोक कल्याण की भावना वैदिक विचारधारा का आधार है। इस प्रकार वैदिक वाङ्मय में प्रतिपादित जीवन मूल्य आज के संदर्भ में भी समीचीन हैं।

अब हम आधुनिक हिंदी साहित्य का आकलन उन महनीय वैदिक जीवन-मूल्यों की कसौटी पर करने का प्रयत्न करेंगे। आज तो हम इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश कर चुके हैं। इसके पूर्व संपूर्ण बीसवीं शताब्दी में लिखित हिंदी वाङ्मय को आधुनिककालीन ही कहेंगे। इसी युग में आवागमन एवं संचार-साधनों का अभूतपूर्व विस्तार हुआ। दो-दो भीषण विश्व युद्ध के नरसंहार देखे। परमाणु-विस्फोट का तांडव देखा। वादों का वितण्डावाद देखा। प्रजातंत्र की आड़ में शोषण और पीड़न का करुण-क्रंदन देखा। उसके अवलेपन स्वरूप विवेकानंद, अरविंद, तिलक, गांधी, लेनिन, टॉल्स्टाय, रूसो, वाल्टेयर, मेजिनी, रसेल, जुई फिशर, रोम्याँरोलाँ, गोर्की, प्रेमचंद, रवींद्र, शरत और निराला आदि के क्रियाकलाप देखे। संपूर्ण विश्व को सिमटते भी देखा। संयुक्त राष्ट्रसंघ के उदय में मानव कल्याण का बिंब भी प्रतिबिंबित हुआ। द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के आधार पर खड़े साम्यवाद को ध्वस्त होते हुए देखा। भौतिकवाद के तम में स्वार्थांध मानव को भटकते हुए देखा। व्यक्तिवाद और स्वच्छंदतावाद का वर्चस्व प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा है। नैतिकता, कर्तव्य परायणता और समर्पणशीलता का स्थान अवसरवादिता तथा

'ऋग्वेद' का संज्ञानम् सूक्त समष्टि-भावना का प्रचारक है। उसमें सबको सामंजस्य की प्रेरणा मिलती है। सौहार्द का प्रतिपादन है। सहकारिता, सहयोग, सहभोज, सहपान, समचित्तता, अविद्वेष, कल्याण भावना आदि समता भावनाओं का इन मंत्रों में विचार किया गया है, जो हमारे राष्ट्रीय जीवन-मूल्यों की मानवता की देन हैं।

सुविधाभोग लिप्सा ने ग्रहण कर लिया है।

ऐसे में हिंदी साहित्य की विविध विधाओं में देदीप्यमान वैदिक मूल्यों के आलोक तो विकीर्ण होते ही रहे हैं, साथ ही साथ उन महनीय मूल्यों का अवमूल्यन भी दृष्टिगोचर होता रहा है। संक्रमणकालीन विगत शताब्दी में उत्कृष्ट जीवनमूल्यों की उपलब्धि के लिए कतिपय श्रेष्ठ साहित्यकारों ने स्वस्थ एवं शाश्वत् चिंतन प्रदान किया, जिसने हमारे देश को नैतिक पतन के गर्त में जाने से बचा लिया है। हमारे आलोच्यकालीन साहित्य का प्रयोजन अथवा प्रतिपाद्य भारतीय जीवन-मूल्य तथा मानव-मूल्य हैं, इसमें कोई संशय नहीं। समकालीन रचनाकारों ने परतंत्रता के यथार्थ को भोगा, विश्व के क्षितिज पर नवोदित राष्ट्रों को देखा, संघर्षों को झेला तथा उच्च और शाश्वत मूल्यों की स्थापना की। दिशाविहीन, भयग्रस्त एवं हततेज भारतीय समाज में साहस का संचार किया और सांस्कृतिक पुनर्जागरण एवं राष्ट्रीय पुनर्निर्माण का शंखनाद किया। शांति, अहिंसा, सत्य, संयम, समर्पण, त्याग, अपरिग्रह, संयम, दया, सहनशीलता, सहयोग एवं समरसता आदि गुणों पर बल दिया।

आधुनिक हिंदी साहित्य का उदय भारतेंदु काल से माना जाता है। इस युग का साहित्य और समाज सांस्कृतिक पुनरुद्धार से परिचालित था। उसी की देन है साहित्य का बहुमुखी विकास। निश्चय ही हिंदी साहित्य में इस विकास के सूत्रपात का श्रेय भारतेंदु युग को जाता है। महर्षि दयानंद, विवेकानंद आदि के द्वारा जिन वैदिक मूल्यों की प्राण प्रतिष्ठा हुई, उन्हें पिछली विरासत के रूप में साहित्य में गढ़ने की चेष्टा की गई। वैदिक संस्कृति एवं रामायण-महाभारत के समुद्र-मंथन से प्राप्त मूल्यों की नवी दृष्टि से परखकर युगानुकूल व्याख्या करने की प्रवृत्ति जाग्रत हुई। प्राचीन और नवीन के समन्वय से दो प्रमुख धाराओं का विकास हुआ– गांधीवाद और आदर्शवाद। एक ओर वैदिक तत्त्वामृतों को पानकर जीवन में ढालने की प्रवृत्ति थी, दूसरी ओर पश्चिम के प्रभाव से अभिभूत न होने की प्रवृत्ति। आधुनिक हिंदी साहित्य के इस नवजागरण काल में वैदिक मूल्यों से भावित राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना एवं राष्ट्रीय गौरव भावना ने पश्चिम के कुप्रभाव से हमारी अस्मिता की रक्षा की। लेकिन परतंत्रता के कारण देश के बहुत बड़े समुदाय पर अँगरेजी भाषा, साहित्य और संस्कृति का कुप्रभाव भी पड़ा। इस कारण हमारे जीवनमूल्यों का कम अहित नहीं हुआ। लोग स्वदेशी आचार-विचार, रहन-सहन से विमुख हो उठे। इससे देश-हितैषी साहित्यकार सजग हो गए। उन्होंने पश्चिमी प्रभाव का साहित्य में खुलकर विरोध किया। आँख मूंदकर पाश्चात्य सभ्यता के अंधानुकरण करने की प्रवृत्ति पर व्यंग्य-बाण बरसाए गए। पंडित श्री नाथूराम शर्मा 'शंकर' की कुछ पंक्तियाँ इस संदर्भ में उल्लेखनीय हैं–

ईश गिरिजा को छोड़ यीशु गिरजा में जाय
शंकर सलोने मैन निस्तर कहावेंगे,
बूट पतलून कोट कामफट टोपि डटी,

आधुनिक हिंदी साहित्य का उदय भारतेंदु काल से माना जाता है। इस युग का साहित्य और समाज सांस्कृतिक पुनरुद्धार से परिचालित था। उसी की देन है साहित्य का बहुमुखी विकास। निश्चय ही हिंदी साहित्य में इस विकास के सूत्रपात का श्रेय भारतेंदु युग को जाता है। महर्षि दयानंद, विवेकानंद आदि के द्वारा जिन वैदिक मूल्यों की प्राण प्रतिष्ठा हुई, उन्हें पिछली विरासत के रूप में साहित्य में गढ़ने की चेष्टा की गई।

जाकट की पाकट में वाच लटकावेंगे।
घूमेंगे घमंडी बन रंडी का पकड़ हाथ,
पिएंगे बरंडी मीट होटल में खावेंगे।
फारसी की छार सी उड़ाय अँगरेजी पढ़ि,
मानो देवनागरी का नाम ही मिटावेंगे।

भारतेंदु मंडल के समग्र रचनाकार नवजागरण के संदेशवाहक थे। इस युग के आदर्श पौराणिक नायकों में राम, कृष्ण, अर्जुन आदि आदर्श पुरुष थे, तो सीता, सावित्री, द्रोपदी, रुक्मिणी, ललिता, राधिका, गोपिका आदि नायिकाएँ आदर्श थीं। इसके साथ ही साथ हिंदी नाट्य साहित्य में स्वच्छंद प्राणय की एक क्षीण धारा क्रमशः वेगवती होती चली जा रही थी। लेकिन मूल्यों के प्रति समर्पण भाव का ही भारतेंदु युग में बाहुल्य था। पंडित राधाचरण गोस्वामी का ऐतिहासिक नाटक 'सती चंद्रावती' महत्त्वपूर्ण है। यहाँ शहजादा के बलात्कार से बचने हेतु चंद्रावती अग्नि में भस्म होकर धर्म रक्षा करती है। भारतेंदु युग का यही आदर्श था। बाद में द्विवेदी और प्रसाद युग में इसमें थोड़ा बहुत परिवर्तन दिखाई देने लगा।

सन् 1900 ई. में हिंदी को कचहरियों में स्थान मिल गया। सन् 1905 ई. में बंग विच्छेद के विरोध में स्वदेशी आंदोलन छिड़ गया। इसकी बहुत बड़ी देन है, हिंदी साहित्य और प्राचीन संस्कृति के पुनरुज्जीवन की भावना। फलस्वरूप, मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'भारत-भारती' का प्रणयन करके उज्ज्वल अतीत के जीवन-मूल्यों से प्रेरणा लेने की सिंह गर्जना की–

उन पूर्वजों के शील की शिक्षा-तरंगों में बहो।
वे मोह बंधनमुक्त थे, स्वच्छंद थे स्वाधीन थे,
संपूर्ण सुख संयुक्त थे, वे शांति शिखरासीन थे,
तन से, वचन से, कर्म से, वे प्रभु-भजन में लीन थे।

उनके 'साकेत' में राम का अवतार भारतीय जीवन-मूल्यों की रक्षा और उत्कर्ष के लिए ही कीर्तित है। उनका राम लोक में अलौकिक आदर्श स्थापित करने, नर को नारायण बनाने और मूल्यों को स्थापित कर भूतल को स्वर्ग बनाने के लिए ही जन्म ग्रहण करता है–

मैं मनुष्यत्व का नाट्य खेलने आया।
मैं यहाँ एक अवलंब छोड़ने आया,
भव में नव वैभव व्याप्त कराने आया।
नर को ईश्वरता प्राप्त कराने आया।
संदेश यहाँ मैं नहीं स्वर्ग से लाया,
इस भूतल को ही स्वर्ग बनाने आया।

इस महाकाव्य में उर्मिला के इस उद्गार ने उसके विरह-विवाद को कितना त्यागमय बना दिया है? वह लक्ष्मण से इतना कहती है–

'तुम व्रती रहो। मैं सती रहूँ।'

यशोधरा की उद्भावना कितना सटीक है

'आर्यपुत्र दे चुके परीक्षा अब है मेरी बारी।'

यदि गौतम चुपके से न जाकर यशोधरा से अनुमति लेकर जाते, तो उस परित्यक्ता गृहिणी को अपने पति को जन-कल्याण के मार्ग के अनुसंधान हेतु विदा करने का गौरव प्राप्त होता–

देती उन्हें विदा मैं गाकर,

मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'भारत-भारती' का प्रणयन करके उज्ज्वल अतीत के जीवन-मूल्यों से प्रेरणा लेने की सिंह गर्जना की। उनके 'साकेत' में राम का अवतार भारतीय जीवन-मूल्यों की रक्षा और उत्कर्ष के लिए ही कीर्तित है। उनका राम लोक में अलौकिक आदर्श स्थापित करने, नर को नारायण बनाने और मूल्यों को स्थापित कर भूतल को स्वर्ग बनाने के लिए ही जन्म ग्रहण करता है। इस महाकाव्य में उर्मिला के इस उद्गार ने उसके विरह-विवाद ने कितना त्यागमय बना दिया है।

भार झेलती गौरव पाकर,
पहुँचाती मैं उन्हें सजाकर,
गये स्वयं वे मुझे लजाकर।

पति वियोगिनी यशोधरा हर हाल में खुशहाल रहकर पति की सिद्धि और सफलता की कामना करती–

जायँ सिद्धि पावें वे सुख से,
दुखी न हों इस जन के दुःख से,
उपालंभ दूँ मैं किस मुख से।
आज अधिक वे भाते ।
सखि वे मुझसे कहकर जाते ।

'वक-संहार' में गुप्त जी ने परोपकारार्थ आत्मोत्सर्ग की उदात्त भावना को निरूपित किया है–

बलि दो तुझे माँ, जन्म मेरा हो सुफल
(वक-संहार, पृ. 36)

'अनघ' में मनुजत्व पर अत्याचार के विरोध को दृढ़ता के साथ प्रतिपादित करते हैं –

'उत्पीड़न अन्याय कहीं हो, दृढ़ता सहित विरोध करो।' यही नहीं उसका नायक भुवन सेवा को हो चरम लक्ष्य समझता है–

मुझे है इष्ट जन-सेवा
सदा सच्ची भुवन-सेवा (पृ. 95)।

'मंगल घट' में गुप्त जी ने अपनी मूल्यनिष्ठा का परिचय देते हुए मनुष्यता के महत्त्व पर व्यापक प्रकाश डाला है। तद्नुसार जो व्यक्ति जितना ही अधिक धर्मनिष्ठ होगा, वह उतना ही सफल होगा–

जहाँ लोकसेवा महाधर्म है।
जहाँ कामना छोड़कर ही कर्म है।
जहाँ ज्ञान है, कर्म है, भक्ति है।
भरी जीव में ईश्वरीय शक्ति है।
जहाँ मुक्ति में मुक्ति का धाम है।
जहाँ मृत्यु के बाद भी नाम है।

'गुरुकुल' का वंदावैरागी मानव मात्र में निहित मनुष्यता की भावना को सर्वोपरि मानता हैऔर चंडीदास की उक्ति 'संसार उपरिमानुष सत्य' को चरितार्थ करता है –

हिंदू हो या मुसलमान हो।
नीच रहेगा फिर भी नीच,
मनुष्यत्व सबके ऊपर है।
मान्य महिमंडल के बीच ।

गौरांग महाप्रभु को सहधर्मिणी – विष्णुप्रिया के जीवन का यह सत्य कि 'सहने के ही लिए बनी है, सह तू दुखिया नारी', भारतीय नारी समाज की सहिष्णुता का द्योतक है। बीसवीं शताब्दी के प्रतिभावान कवियों ने जीवन- मूल्यों को परीक्षित करके देश के सामान्यजनों के संवेदनों से जोड़कर उन्हें और मूल्यवान तथा सार्थक बना दिया है। इस प्रकार प्राचीन मूल्यों और नवीन दृष्टियों में सेतु स्थापित कर रची गई महत्त्वपूर्ण काव्य-कृतियों– 'यशोधरा', 'साकेत', 'पंचवटी','प्रिय-प्रवास', 'कामायनी','राम की शक्ति-पूजा','ऊर्मिला', 'कुरुक्षेत्र', 'रश्मिरथी', 'नकुल', 'कुणाल', 'तुलसीदास', 'विक्रमादित्य', 'चन्द्रगुप्त', 'मौर्यविजय', 'आत्मोत्सर्ग', 'पथिक' तथा 'स्वप्न' आदि ने कीर्तिमान स्थापित किए।

वस्तुतः आधुनिक हिंदी काव्यधारा में जीवन-मूल्यों का जो निरूपण हुआ, उसका मूलस्रोत अतिशय समृद्ध संत एवं भक्ति साहित्य है। उन संतों और भक्तों ने अद्वैत ब्रह्म की ओर इंगित किया, जो एकात्म मानववाद का केंद्रबिंदु है। उनके अनुसार मन, वचन और कर्म से संयम का पालन करना चाहिए। सदाचार, सद्व्यवहार, सत्कर्म, सत्य वचन मानव को उदात्त बनाते हैं। भक्तिकाव्य राम और कृष्ण के उच्चतर जीवन-मूल्यों के अनुसरण और प्रतिष्ठा से संलग्न रहा है। उनके अनुसार जब विधाता एक है तो राम- रहीम में अंतर कैसा? इस प्रकार आधुनिक हिंदी साहित्य

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 15

प्रेरणा का स्रोत है। भक्त कवियों द्वारा प्रतिपादित एक जीवन संस्कृति तुलसीकृत 'रामचरितमानस' से जो शील-शक्ति सौंदर्यमयी मंदाकिनी प्रवाहित हुई; उसने बटोरकर लोक-मंगल, अलौकिक आनंद और शाश्वत शांति का संदेश प्रदान कर आधुनिक कवियों को भी अभिभूत कर दिया। 'साकेत', 'वैदेही वनवास' आदि में वे जीवन-मूल्य पुनः उद्‌घाटित हुए हैं। छायावादी युग में जयशंकर प्रसाद ने जीवन के वास्तविक तत्त्व करुणा, प्रेम, उदारता, सत्य, क्षमा, दया, सेवा, साहस, शौर्य, विजय-भावना आदि के संधान का प्रयास किया जो भारतीय संस्कृति की महानता तथा वैदिक जीवन-मूल्यों को स्थापित करनेवाले हैं। भारतीय आत्मा माखनलाल चतुर्वेदी ने 'पुष्प की अभिलाषा' के बहाने समर्पणशीलता के आदर्शभूत मूल्यों को बड़ी मार्मिकता से व्यक्त किया है–

मुझे तोड़ लेना वनमाली ।
उस पथ पर तुम देना फेंक।
मातृभूमि पर शीश चढ़ाने।
जिस पथ जावें वीर अनेक।।

उनमें अपार भावुकता है और वे कट्टर राष्ट्रवादी हैं। अपनी वाणी तथा क्रिया में सामंजस्य रखनेवाले और मूल्यों के प्रति समर्पित कवि हैं।

सुश्री महादेवी वर्मा के काव्य में ममता, करुणा, प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, अहिंसा, परोपकार, संतोष, उदारता, आत्मीयता, शालीनता, कोमलता आदि चारित्रिक गुणों का मानव में ही नहीं मानवेतर प्राणियों में भी पाये जाने का लालित्यपूर्ण चित्रण मिलता है। उनका हृदय भारतीय दर्शन से अत्यधिक प्रभावित होने के कारण उनकी रचनाओं पर भी उनका स्पष्ट प्रभाव है। वेदांत के अनुसार जीवन को वे क्षणभंगुर समझती हैं–

विकसने मुरझाने को फूल।
उदय होता छिपने को चंद
शून्य होने को भरते मेघ।
दीप जलता होने को मंद,
यहाँ किसका अनंत यौवन?
अरे अस्थिर छोटे जीवन।

कवयित्री ने खंड में अखंड और सीमित में असीम को समझाने की चेष्टा की है। वह अनंत ब्रह्म तब तक प्राप्तव्य नहीं माना जा सकता, जबतक अंदर और बाहर का परिवेश शांत न हो–

विश्व में वह कौन सीमाहीन है।
हो न जिसकी खोज सीमा में मिली ?
क्यों रहोगे क्षुद्र प्राणों में नहीं।
क्या तुम्हीं सर्वेश एक महान हो?
दुःख के पद छू बहते झर-झर।
कण-कण में आँसू के निर्झर ।
हो उठता जीवन मृदु उर्वर ।

महाकवि निराला ने अपने काव्य में प्राचीन संस्कृति की गौरव-गरिमा की व्याख्या करते हुए विवेक, संयम, परदुःखकातरता, मर्यादा, शिष्टाचार, अनाचार का दमन, मानव-कल्याण, पुरुषार्थ एवं त्याग भावना तथा सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि का संबल लेकर जिस उत्कृष्ट काव्य का

सुश्री महादेवी वर्मा के काव्य में ममता, करुणा, प्रेम, कर्तव्यनिष्ठा, अहिंसा, परोपकार, संतोष, उदारता, आत्मीयता, शालीनता, कोमलता आदि चारित्रिक गुणों का मानव में ही नहीं मानवेतर प्राणियों में भी पाये जाने का लालित्यापूर्ण चित्रण मिलता है। उनका हृदय भारतीय दर्शन से अत्याधिक प्रभावित होने के कारण उनकी रचनाओं पर भी उनका स्पष्ट प्रभाव है। वेदांत के अनुसार जीवन को वे क्षणभंगुर समझती हैं

सृजन किया है, वह वैदिक महनीय जीवनमूल्यों और आधुनिकता के औचित्यपरायण व्यवहार के सम्मिश्रण एवं संप्रेषण से सामान्य मानव को सुसंस्कृत और समाज को समृद्ध एवं सशक्त बनाने में सक्षम है।

सन् 1922 में निराला जी 'समन्वय' के संपादक नियुक्त हुए। वहाँ पर उन्हें रामकृष्ण परमहंस और स्वामी विवेकानंद की अद्वैतवादी स्थापनाओं के अध्ययन का विशेष अवसर प्राप्त हुआ। उसी समय से दर्शन ने उनके जीवन में इस प्रकार घर कर लिया कि वे फिर आजीवन उससे प्रभावित रहे। उनकी शृंगारिक रचनाओं में भी दर्शन का प्रभाव अनुस्यूत रहा। निराला' की 'जागो फिर एक बार' शीर्षक कविता यद्यपि राष्ट्रीय उद्बोधन गीत है, फिर भी इसमें जीव के ब्रह्मत्व का स्मरण दिलाकर कवि ने अद्वैत दर्शन की स्थापना की है–

तुम हो महान् तुम हो महान
हे नश्वर यह दीन भाव,
कायरता, कामपरता
ब्रह्म हो तुम,
पद-रज भर भी रे नहीं
पूरा यह विश्व भार
जागो फिर एक बार।

'तुम और मैं' शीर्षक रचना में जीव और ब्रह्म का अन्योन्याश्रित संबंध भक्ति भावना के समग्र उन्मेष के साथ कवि ने संस्थापित किया है। इसमें कवि का भावुक हृदय दर्शन के साथ बड़े ही भावमय रूप से संबद्ध हो गया है। कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं –

''तुम चित्रकार, घन पटल श्याम
मैं तड़ित तूलिका रचना।
तुम रण तांडव-उन्माद नृत्य
मैं मुखर मधुर नूपुर-ध्वनि,
तुम नाद-वेद ओंकार सार
तुम कुंद-इंदु-अरविंद-शुभ
तो मैं हूँ, निर्मल व्याप्ति।

इन पंक्तियों में कवि ने विशिष्टाद्वैत की सुंदर प्रतिष्ठा की है।

अँग्रेजों ने भारतीय इतिहास को विकृत कर आर्यों को आक्रामक के रूप मे जो घोषित किया था, उसका महाकवि जयशंकर प्रसाद ने अपनी प्रखर लेखनी से निराकरण किया–

हमारी जन्मभूमि थी यहाँ,
कहीं से हम आये थे नहीं।

भारतीयों ने जगद्गुरु के रूप में संसार को ज्ञान की दीक्षा दी और सत्य, धर्म, शील एवं शांति का उपदेश दिया था–

हमी ने दिया शांति-संदेश,
सुखी होते देकर आनंद ।
विजय केवल लोहे की नहीं,
धर्म की रही धरा पर धूम ।
भिक्षु होकर रहते सम्राट,

महाकवि निराला ने अपने काव्य में प्राचीन संस्कृति की गौरव-गरिमा की व्याख्या करते हुए विवेक, संयम, परदुःखकातरता, मर्यादा, शिष्टाचार, अनाचार का दमन, मानव-कल्याण, पुरुषार्थ एवं त्याग भावना तथा सूक्ष्म सौंदर्य दृष्टि का संबल लेकर जिस उत्कृष्ट काव्य का सृजन किया है, वह वैदिक महनीय जीवनमूल्यों और आधुनिकता के औचित्यपरायण व्यवहार के सम्मिश्रण एवं संप्रेषण से सामान्य मानव को सुसंस्कृत और समाज को समृद्ध एवं सशक्त बनाने में सक्षम है।

दया दिखलाते घर-घर घूम ।
भुवन को दिया दया का दान,
चीन को मिली धर्म की दृष्टि ।
मिला था स्वर्णभूमि को रत्न
शील की सिंहल को भी सृष्टि।

वैदिक जीवन-मूल्यों के संदर्भ में ही महाकवि जयशंकर प्रसाद ने आचार और विचार की एकता के द्वारा आज के ह्रासोन्मुख जीवनमूल्यों के युग में ज्ञान, इच्छा और क्रिया की समरसता पर बल दिया–

ज्ञान दूर कुछ क्रिया भिन्न है,
इच्छा क्यों पूरी हो मन की
एक दूसरे से मिल न सके,
यह विडंबना है जीवन की ।

प्रगतिशील राष्ट्रीयता तथा भौतिकता एवं आध्यात्मिकता के सेतु कविवर पंत युगधर्म के अनुकूल मूल्यों का निर्धारण कर नवयुग का निर्माण और आस्था का संचार करना चाहते थे –

जग-जीवन में उल्लास मुझे।
नव आशा, नव उल्लास मुझे,

वस्तुतः भारतेंदु और द्विवेदी युग की सांस्कृतिक चेतना छायावादी युग में और भी सूक्ष्म और संशलिष्ट रूप में प्रस्फुटित हुई। उसका और विवेकानंद के साथ गांधी का प्रभाव उनके स्वर को यथार्थवादी और लोकोन्मुख बनाता रहा। ऐसे राष्ट्रीय कवियों में दिनकर, सोहनलाल द्विवेदी, बालकृष्ण शर्मा 'नवीन', माखन लाल चतुर्वेदी, सुभद्रा कुमारी चौहान, भवानी प्रसाद मिश्र की कृतियाँ अमर है। अँग्रेजी शासकों के अतिरिक्त उनके द्वारा पोषित उनके प्रतिनिधि देशी शासकों के शोषण से भी लड़ाई चल रही थी। प्रगतिशील राष्ट्रीय कवियों में यह स्वर अधिक उभरकर सामने आया और कवियों को छायावादी आकाश से उतारकर जन-जीवन से जोड़ दिया। दिनकर के समकक्ष नवीन आदि में समाज निर्माण के ऐसे क्रांतिकारी भाव मचल उठे–

उठो, उठो ओ नगें भूखो।
ओ मजदूर किसान उठो।
इस गतिमय मानव समूह के।
ओ प्रचंड अभिमान उठो।
शतियों के आदर्श तुम्हारे।
मूर्त्त रूप धर आये हैं।
नव समाज के नवल सृजना का।
नया संदेश लाये हैं।
दिशि-दिशि में समता स्थापन के।
ये अभिनव स्वर छाये हैं।
महाक्रांति के नव विधान हित।
तुम करने बलिवान उठो।

(नवीन : हम विषयायी जगत के)

दिनकर की सृजन भावना की पृष्ठभूमि में गहरे वैदिक चिंतन-दर्शन का अधिष्ठान है। साथ ही रामायण, महाभारत एवं पौराणिक जीवनमूल्यों का भी सन्निवेश है। उन्होंने अपने काव्य में गरिमामय अतीत और उसके संस्कारों का वर्णन करके देशवासियों में राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक चेतना का संचार किया है। उनके काव्य में

वैदिक जीवन-मूल्यों के संदर्भ में ही महाकवि जयशंकर प्रसाद ने आचार और विचार की एकता के द्वारा आज के ह्रासोन्मुख जीवनमूल्यों के युग में ज्ञान, इच्छा और क्रिया की समरसता पर बल दिया। अँग्रेजों ने भारतीय इतिहास को विकृत कर आर्यों को आक्रामक के रूप मे जो घोषित किया था, उसका उन्होंने अपनी प्रखर लेखनी से निराकरण किया और कहा कि भारतीयों ने जगद्‌गुरु के रूप में संसार को ज्ञान की दीक्षा दी और सत्य, धर्म, शील एवं शांति का उपदेश दिया था।

युद्ध-दर्शन का स्वर अधिक मुखर है। प्रारंभिक कविताओं में भले ही उन्होंने विषमताओं के विनाश के लिए क्रांति की आराधना की हो, किंतु उन्हें रूस का साम्यवाद और अमेरिका का साम्राज्यवाद भारतीय जनतांत्रिक व्यवस्था के समक्ष महत्त्वहीन ही लगते रहे हैं। कवि ने वैदिक मान्यताओं के अनुरूप जाति-भेद और रंग-भेद को कभी महत्त्व नहीं दिया। शांति के संदेश में भोग की अपेक्षा त्याग को ही लक्ष्य बनाया है। वह मातृत्व को भारतीय नारी की सर्वाधिक बलवती चाह मानकर 'रसवती', 'रश्मिरथी', 'उर्वशी', 'औशौनरी' आदि का प्रणयन करता है। वैदिक सभ्यता के अंग रूप मित्रता को मानकर कर्ण को उसका आदर्श मानता है। गुरुभक्ति की मर्यादा का सर्वत्र निर्वाह करता है। ईश्वर के प्रति आस्था तथा अपने कर्तव्यों का पालन करने को महत्त्व प्रदान करता है। कवि 'कुरुक्षेत्र' में भीष्म द्वारा भाग्यवाद के प्रति घृणा व्यक्त करते हुए उसे पाप का आवरण बताकर कर्म को प्राधान्य देता है। देश स्वतंत्र होने के पश्चात् अंतर्राष्ट्रीयता का समर्थक बन जाता है। हिमालय से उन्हें क्रांति की नहीं, शांति की चाह है। भारत से त्याग और विराग की आकांक्षा है। वह ईर्ष्या, स्पर्धा और पारस्परिक अविश्वास के स्थान पर धर्म और श्रद्धा को महत्त्व देता है। मानवीय मूल्यों की स्थापना हेतु भारतीय जीवनमूल्यों को वरीयता प्रदान करता है–

''भारत एक स्वप्न, भू को ऊपर ले जानेवाला,
भारत एक विचार, स्वर्ग को भू पर लानेवाला।
भारत है संज्ञा विराग की, उज्ज्वल आत्म उदय की,
भारत है आभा मनुष्य की, सबसे बड़ी विजय की ।''

कैसी भी विषम परिस्थिति क्यों न हो भारतीय जीवनमूल्यों की कहीं भी वह अवहेलना नहीं करता है। उनकी वाणी में जाग्रत और सशक्त पौरुष का उच्चार है। उनका वास्तविक रूप 'रेणुका' और 'हुँकार' में दिखाई पड़ता है। 'हिमालय', 'नई दिल्ली', 'तांडव', 'दिगंबरी', 'हाहाकार', 'विपथगा', 'अनल किरीट' जैसी विशिष्ट कविताएँ हमलोगों को किशोरावस्था से ही झकझोरती रही हैं। वस्तुतः वे उमंग और मस्ती के कवि है। फिर भी सामाजिक मंगलाकांक्षा और जीवनमूल्यों के प्रतिष्ठता हैं। प्रखर क्रांतिकारी हैं–

सच कहता हूँ कवे! तुम्हारी पंक्ति-पंक्ति में
जैसे भारत का हुंकृत तेजोज्ज्वल स्वर है,
मेघमंद्र गर्जन है, राम-भीष्म पौरुष है,
और इन्द्र द्वारा प्रदत्त अर्जुन का शर हैं।
हे युग स्रष्टा! तुमने जो संकेत किये है,
वह निःस्वार्थ हृदय की विशुद्धता का फल है,
किसी महाकवि के झुलसे अंतर की ध्वनि है,
किसी विकल योद्धा का उद्धत क्रोधानल है।
प्रतीक्षा परशुराम से लगा, युधिष्ठिर 'कुरुक्षेत्र' का
आज्ञा देता हो, अर्जुन टुक शस्त्र संभालो,
जिनने अभी तुम्हारे सुत को छल से मारा,
उनके सारे कुटुंबियों के शीश उड़ा लो।

भारतीय जीवन-मूल्यों एवं गांधी दर्शन के प्रवक्ता राष्ट्रकवि पंडित सोहनलाल द्विवेदी की रचनाधर्मिता में भारत-भक्ति, निष्काम सेवा, त्याग, बलिदान और सद्भावना का चरमोत्कर्ष है। नेताओं के जीवन में मूल्यों के पतन से उन्हें घोर क्षोभ है, उन्हें वे आत्मचिंतन के लिए ललकारते हैं –

ओ गणतंत्र माननेवालो। ओ जनतंत्र गीत के गायक,
पीछे हटो, बढ़ो मत आगे। बन जनता के उन्नायक,
स्वयं सुधारो तुम अपने को। ओ सुधारवादी नेता
कथनी और और करनी है। आज रहे तुम किस लायक?

आधुनिक हिंदी काव्य के उत्कर्षकालीन कवियों में बिहार का भी बहुत बड़ा योगदान है। यहाँ के कवियों में मोहन लाल महतो 'वियोगी', जानकीवल्लभ शास्त्री, आरसी प्रसाद सिंह, मनोरंजन प्रसाद सिंह, रामदयाल

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 19

पांडेय, प्रो. केसरी, गोपाल सिंह नेपाली तथा जर्नादन प्रसाद झा 'द्विज' आदि उल्लेखनीय हैं। इनमें आरसी कवि यद्यपि उदाम सौंदर्य के प्रमुख कवि रहे हैं, फिर भी 'नन्ददास' आदि रचनाओं से वैदिक दर्शन का बिंब अरविंद- दर्शन के आलोक में प्रतिबिंति होते देख सकते हैं। आरंभ में कवि ने श्री अरविंद का स्तवन किया है।

देख रहा हूँ प्रखर ज्योति जो उतर रही है
दिव्य स्वर्ग से, जो भूतल पर बिखर रही है
राशि-राशि सुमनों के दल पर, किसलय मुख पर।
ताल- ताल पर थिरक रही जो नवल छंद भर।
वह प्रवेश कर चुकी बुद्धि की गुहा गहन में।
समा चुकी वह चिर प्रकाश की धारा मन में।
यह कर चुकी प्राण के मंडल को भी संयत ।
अब वह जड़ के अंतराल में घुसी अपरिहता।
वह जड़ जो चिर युग-युगांत से रहा अचेतन।
रश्मि-स्पर्श से रहित, तिमिर से पूर्ण अपावन।
बरसेगी जड़ में भी जीवन-ज्योतिर्धारा।
टूटेगी निश्चित निश्चेतन प्रस्तर-कारा।

वस्तुतः उनका 'नंददास' काव्य के अतिरिक्त विशिष्ट वेदांत-जीवन दर्शन का प्रतीक भी है। श्री विट्ठलनाथ कवि नंददास को अपने आध्यात्मिक उपदेश द्वारा जो प्राणाहुति दी उससे उसकी चेतना का क्रमशः ऊर्ध्वारोहण होता चला गया।

जड़-चेतन की ग्रंथि पड़ी है सूढ़ हृदय में।
पर ज्यों ही यह ग्रंथि टूटती ज्ञानोदय में।
पृथक्-पृथक् क्या जड़ या चेतन रह जाते हैं।
जड़ भी ज्ञान-ज्योति में चेतन बन जाते हैं।

(नंददास, पृ9 56)

वस्तुतः इस प्रतीक-काव्य के माध्यम से कवि ने जड़ के चेतना में रूपांतरित होने के दार्शनिक सिद्धांत का काव्यमय वर्णन किया है—

वही एक आनंद-सघन रस केवल रमता ।
जैसे तिल में तेल दूध में घृत है रहता ।
जब आत्मा के सिवा किसी का स्फुरण न आया।
तब समझो कुछ हाथ लगा है, कुछ है पाया ।''

आधुनिक हिंदी काव्य के उत्कर्षकाल अर्थात् द्विवेदी युग, छायावादी और प्रगतिवादी युगों के युगांतकारी कवियों में जीवन-मूल्यों का वैसा ही महत्त्व है, जिस प्रकार पुष्पों में सुगंधि और सौंदर्य, देह में प्राण तथा उत्तम पुरुष और उत्तम नारी में शील अंतर्निहित हो।

(लेखक वरिष्ठ साहित्यकार हैं।)

संदर्भ

1. ऋ. 10.71.7
2. महाभारत कर्ण पर्व, 69.58
3. मनुस्मृति 6.92
4. Manual of Ethics John S. Mackengie, Delhi 973, P. 7
5. डॉ. आत्रेय, नीतिशास्त्र, आगरा, 1970
6. ऋ. 1.89.8
7. डॉ. शिवदत्त ज्ञानी, वेदकालीन समाज, वाराणसी, 1967, पृ. 260
8. ऋ. 10.190.1
9. डॉ. आत्रेय, भारतीय नीतिशास्त्र का इतिहास, पृ. 39
10. सातवलेकर, ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, पार्डी, सप्तममंडल, पृ. 226
11. ऋ. 1.31.13, 1.33.1, 1.185.3, 6.22.10
12. यजु. 36.18
13. ऋ. 10.7.7
14. ऋ. 3.62.10

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 20

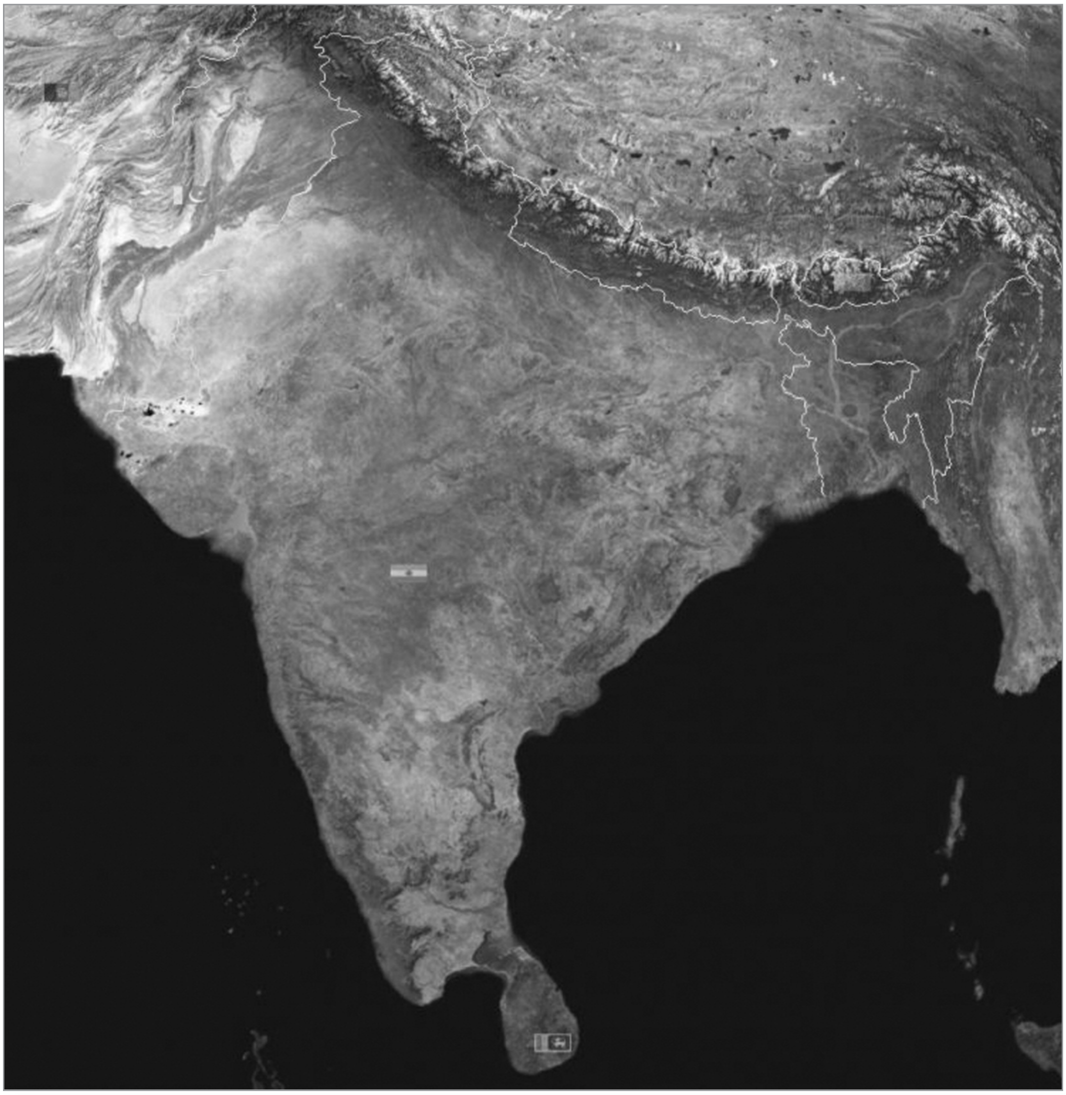

वैदिक वाड्मय में वसुधैव कुटुबम्कं की बात कही गई है अर्थात् हमें पूरी वसुधा को एक कुटुम्ब मान कर व्यवहार करना चाहिए। इससे स्पष्ट है कि मानव का कल्याण और सुखी जीवन तभी संभव है जब वह पूरी वसुधा को एक कुटुम्ब मान कर प्राणिमात्र के प्रति मित्रवत् व्यवहार करें। व्यक्ति के मन में वसुधैव कुटुम्बकं की यह भावना क्रमशः पाँच चरणों– व्यक्ति, परिवार, समाज, राष्ट्र और वसुधा (अंतरराष्ट्रीयता) को पूर्ण कर ही फलीभूत होती है। इस प्रकार अंतरराष्ट्रीयता को प्राप्त करने की पूर्व की सीढ़ी है 'राष्ट्रीयता'। प्रस्तुत लेख में राष्ट्रीयता और अंतरराष्ट्रीयता के इसी संबंध की व्याख्या कर रहे हैं रवि देव गुप्ता –

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 21

रवि देव गुप्ता

देशभक्ति, राष्ट्रीयता व अंतरराष्ट्रीयता

इस सृष्टि में प्रत्येक मनुष्य ईश्वर की व्यवस्था के अनुसार पृथ्वी के किसी भाग में जन्म लेता है। वह भू-भाग, भौगोलिक दृष्टि से उस व्यक्ति का जन्म स्थान होने के कारण उसका अपना देश कहलाता है। अतः प्रत्येक मनुष्य का एक स्वदेश होता है और नैतिकता के अनुरूप वह उसकी मातृभूमि है, जिसके साथ माता की तरह प्रेम करना, उसके लिए सब प्रकार का त्याग करना और संपूर्ण सामर्थ्य से उसके कल्याण का चिंतन करना एक वांछित सात्विक भाव है।

विभिन्न भाषाओं में उसे मादरे-वतन, मदरलैंड, फादरलैंड, देश आदि के नाम से संबोधित किया गया है। व्यापक रूप में हम इसे उस व्यक्ति का देश व उसके प्रति भक्ति आदि को देशभक्ति कहेंगे।

वेदों में विशुद्ध देश भक्ति का अति उत्तमता से प्रतिपादन किया गया है एवं असंख्य बार उसके लिए 'माता' शब्द का प्रयोग कर उसके हितचिंतन के लिए निर्देश किया गया है।

''उच्छ्वंचस्व पृथिवी मा नि बाधथाः
सूपायनास्मै भव सूपवंचना।
माता पुत्रं यथा सिचाभ्येनं भूम ऊर्णहि ।।''

ऋ10/18/11

अर्थात् हे मातृभूमे! तू हमें सदा उन्नत करके सुख दे, कभी कष्ट न दे एवं उत्तम वस्तुओं को प्राप्त कराने वाली हो। जिस प्रकार माता पुत्र के साथ प्रेम करती है, तू हमारे साथ प्रेम कर हमें सब ओर से आच्छादित करे।

यह मातृभूमि के प्रति हार्दिक प्रार्थना है। जब तक हम उसे अचेतन भूखंड समझते है; तब तक हम उसके साथ आतंरिक प्रेम प्रकट नहीं कर सकते।

माता भूमिः पुत्रो अहं पृथिव्याः।।

अथर्व 12/1/12

अर्थात् यह भूमि मेरी माता है और मैं इस पृथ्वी का पुत्र हूँ।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 22

स्मरणीय है कि अपनी माता से प्रेम करने का अर्थ अन्यों की माताओं से द्वेष करना नहीं है।

''योनो द्वेषत्पृथिवि यः
पृतन्याद्यो अभिदासान्मनसा यो वधेन।''

अथर्व 12/1/14

तात्पर्य यह है कि अपनी मातृभूमि की रक्षा करना देशवासियों के पवित्र साध्यों में से है। जो द्वेष करते हों, जो मन से हमें दास बनाना चाहते हों (जैसे कि चतुर अँग्रेज शासक थे) अथवा जो सेना द्वारा आक्रमण करके शस्त्रास्त्रों द्वारा हमें अपने अधीन करना चाहे, उनका डटकर मुकाबला करना और अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता तथा अखंडता की रक्षा करना, वेदों के अनुसार सब देशवासियों का कर्तव्य है। वीर राणा सांगा, महाराणा प्रताप, छत्रसाल, राठौर दुर्गादास आदि राजपूतों और छत्रपति शिवाजी, गुरु गोविंदसिंह आदि ने देश भक्ति के शुद्ध भाव से प्रेरित होकर अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए अनेक कष्ट सहे। महर्षि दयानंद जी की गणना यद्यपि राजनीतिक नेताओं में नही की जाती क्योंकि उनका मुख्य कार्य वैदिक धर्म का उद्धार और सुधार रहा, तथापि देशभक्ति की वैदिक भावना उनके अंदर कूट-कूट कर भरी हुई थी।

अपनी मातृभूमि की रक्षा करना देशवासियों के पवित्र साध्यों में से है। जो द्वेष करते हों, जो मन से हमें दास बनाना चाहते हों (जैसे कि चतुर अँग्रेज शासक थे) अथवा जो सेना द्वारा आक्रमण करके शस्त्रास्त्रों द्वारा हमें अपने अधीन करना चाहे, उनका डटकर मुकाबला करना और अपनी मातृभूमि की स्वाधीनता तथा अखंडता की रक्षा करना, वेदों के अनुसार सब देशवासियों का कर्तव्य है।

वेदों में जिस स्वतंत्रता की रक्षा का उपदेश किया गया है, उस स्वतंत्रता को प्राप्त करने के लिए वे कितने अधिक उत्सुक थे, इस तथ्य का भी 1873 में तत्कालीन वायसराय लार्ड नार्थब्रुक से हुए उनके इस संवाद से भी पता चलता है।

लार्ड नार्थब्रुक ने इस बातचीत का विवरण 'इंडिया ऑफिस' को भेजते हुए लिखा था कि सरकार को इस 'विद्रोही फकीर' पर सतर्कतापूर्ण दृष्टि रखनी चाहिए। इंडिया ऑफिस को भेजे गए विवरण के अनुसार यह बातचीत निम्न प्रकार से हुई। वायसराय ने कहा- ''मुझे बताया गया है कि आप अन्य धर्मों पर जो कटु प्रहार करते हैं, उससे हिंदुओं और मुसलमानों में आपके प्रति विरोध भाव पैदा हो गया है। क्या आपको यह भय है कि आपके विरोधी आप पर कोई आक्रमण करेंगे, विशेष रूप से मैं यह पूछना चाहता हूँ कि क्या आपको हमारी सरकार की ओर से किसी प्रकार के संरक्षण की आवश्यकता है ?'' स्वामी दयानंद जी का उत्तर था–''मुझे अपने ऊपर किसी के द्वारा आक्रमण का किसी प्रकार का भय नहीं है।''

''मैं प्रतिदिन प्रातः-सायं भगवान् से प्रार्थना करते हुए यह माँगता हूँ कि दयालु भगवान् मेरे देश को विदेशी शासन से शीघ्र मुक्त करें।''

लार्ड नार्थब्रुक ने तो इस स्पष्ट और निर्भीक उत्तर की कतई कल्पना भी नहीं की थी। उसने एकदम बातचीत समाप्त कर दी। इस बातचीत ने वायसराय के मन में ऋषि दयानंद के उद्देश्यों और कार्यों के संबंध में संदेह उत्पन्न कर दिया। तभी उन्होंने सरकार को इस विद्रोही फकीर से सावधान रहने की सलाह दी थी।

इतनी उज्ज्वल देशभक्ति और स्वतंत्रता की भावना रखते हुए भी स्वामी दयानंद सरस्वती ने किस प्रकार एक 'महाराज सभा' अथवा 'सार्वभौम चक्रवर्ती

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 23

महाराज सभा' की कल्पना की थी-इसे हम अंतरराष्ट्रीयता के प्रसंग में आगे बताएँगे।

स्वामी दयानन्द सरस्वती के समान स्वामी विवेकानंद जी के अंदर भी उज्ज्वल देशभक्ति की भावना विद्यमान थी। युवकों को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा था– क्या आप दुर्भाग्यपूर्ण पतन के विचार से आक्रांत हो और आप अपने नाम, अपनी प्रसिद्धि, अपनी पत्नी, अपने बच्चों, अपनी संपत्ति और यहाँ तक की अपने शरीर के बारे में सब कुछ भूल गए हो? क्या आपने कभी उस पर विचार किया है? यह (राष्ट्रभक्त बनने का) पहला कदम है, सबसे पहला कदम है। (Are you seized with that one idea of the misery of ruin and have you forgotten all about your name, your fame, your wives, your children, your property, even your own bodies? Have you that in mind? That is the first step (to become a patriot), the very first step". (Complete works of Swami Vivekanand Vol. III, P. 225).

स्वामी रामतीर्थ जिन्होंने स्वामी विवेकानंद की तरह ही अमरीका आदि में धर्म-प्रचार करके भारत माता का मुख उज्ज्वल किया, एक ब्रह्मनिष्ठ महात्मा थे। उनमें भी सात्विक देशभक्ति की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी जैसा कि उनके बनाए एक राष्ट्रीय गीत से (जो अँग्रेजी में स्वतः अमरीका में रहते हुए बनाया था) स्पष्टतया ज्ञात होता है।

इस अत्युत्तम कविता का भावार्थ है कि ''परमेश्वर हमारे पुराने हिंद को और कभी यशस्वी रहे हिंद को आशीर्वाद प्रदान करें।''

''उसके सब पुत्र प्रेम में परस्पर मिल जाएँ। देश तुम्हारी सहायता की याचना करता है। प्रभो! उसकी प्रार्थना को अवश्य सुनो। उसके अंदर राष्ट्रीय भावना भर दो और दिग्दिगंत में उसकी कीर्ति को विस्तृत कर दो। परमेश्वर शक्तिशाली हिंद को आशीर्वाद दें।''

लोकमान्य तिलक निर्भयतापूर्वक अपने विचार प्रकट करते थे और वे भारतीय संस्कृति के प्रतीक थे। 'पंजाब केसरी' लाला लाजपत राय जी भी इसी प्रकार के निर्भीक व स्वार्थत्यागी देशभक्त थे।

प्रत्येक देश की भौगोलिक सीमाएँ होती हैं व उस देश के निवासियों के मध्य एक संयुक्त संस्कृति विकसित होती है जो उनके भाषा, आचार व व्यवहार में एकरूपता का निर्माण करती है। कालांतर में परिस्थितिजन्य कारणों से इसके जन समूह विभिन्न देश-देशांतरों में भी प्रवासी के रूप में स्थायी रूप से बस जाते हैं और उसी देश की नागरिकता अपनाकर उस राज्य के वासी होकर रह जाते हैं।

राष्ट्रीयता

प्रत्येक देश की भौगोलिक सीमाएँ होती हैं व उस देश के निवासियों के मध्य एक परिवार-भावना व एक संयुक्त संस्कृति विकसित होती है जो उनके भाषा, आचार व व्यवहार में एकरूपता का निर्माण करती है। कालांतर में परिस्थितिजन्य कारणों से इसके जन समूह विभिन्न देश-देशांतरों में भी प्रवासी के रूप में स्थायी रूप से बस जाते हैं। स्वदेश न होते हुए भी राजनीतिक दृष्टि से उसी देश की नागरिकता अपनाकर उस राज्य के वासी होकर रह जाते हैं।

विदेशों की नागरिकता स्वीकार करके भी प्रवासीजन स्वदेश के अपने रीति-रिवाज व संस्कृति के प्रति सदा आकर्षित रहते हैं। इस भाव को प्रजातीय भाव कहते हैं जो सदा उन्हें अपनी मातृभूमि की जड़ों से जोड़े रहती

है। अपनी जड़ों से जुड़े रहने की यह नैसर्गिक भावना ही 'राष्ट्र' को जन्म देती है।

राष्ट्र एक जीवमान इकाई है जो स्वयं प्रकट होती है और एक मातृभूमि की संतानों के मध्य में एक अविछिन्न एकता के रूप में परिलक्षित होती है। ''चोट यहाँ लगे और दर्द वहाँ हो'' ही इसका एक महत्त्वपूर्ण मानदंड है। राष्ट्र एक भावात्मक स्वरूप है और एक वेदमंत्र द्वारा इसका स्पष्ट निरूपण होता है–

''तिस्त्रो देवीः बहि इदं सदन्तिः, इडा सरस्वती भारती। महि गृणाना।।'' *यजुः 27/19*

अर्थात् (इडा) - मातृभाषा, मही- मातृभूमि तथा (सरस्वती)- मातृ संस्कृति यह (तिस्त्रो देवी):- तीन देवियाँ इस राष्ट्र में सदा विराजती रहें। राष्ट्र का अर्थ ही है भाषा, वेशभूषा, लिपि, रीति-रिवाज, उत्सव-पर्व, महापुरुष, मातृभूमि के प्रति निष्ठा में एकरूपता।

''उप सर्प मातरं भूमिमेताम्'' *ऋ10/18/10*

अर्थात् इस मातृभूमि की सेवा करो।

इन कसौटियों पर खरा उतरने वाला ही राष्ट्रभक्त माना जाता है।

राष्ट्र एक जीवमान इकाई है जो स्वयं प्रकट होती है और एक मातृभूमि की संतानों के मध्य में एक अविछिन्न एकता के रूप में परिलक्षित होती है। ''चोट यहाँ लगे और दर्द वहाँ हो'' ही इसका एक महत्त्वपूर्ण मानदंड है। राष्ट्र एक भावात्मक स्वरूप है और एक वेदमंत्र द्वारा इसका स्पष्ट निरूपण होता है– ''तिस्त्रो देवीः बहि इदं सदन्तिः, इडा सरस्वती भारती। महि गृणाना।।''

देश, राज्य व राष्ट्र

देश– एक दृश्यमान सत्ता

एक निश्चित भूखंड और उसके निवासी जनसमुदाय। एक शरीर-यंत्र।

राज्य– एक व्यवस्था, शासन प्रणाली

संरक्षण तथा नियंत्रण की एक तांत्रिक व्यवस्था यथा मानव शरीर की इंद्रियां-तंत्र

राष्ट– एक भावनात्मक सत्ता

यथा शरीर में स्थित आत्मा– इसके बिना शरीर निर्जीव व इन्द्रियाँ निष्क्रिय-मंत्र।

अंतरराष्ट्रीयता

समस्त वैश्विक मानवमात्र की एकता व कल्याण के लिए बनाई गई कोई व्यवस्था अंतरराष्ट्रीयता को जन्म देती है। विश्व बंधुत्व की भावना का पर्याप्त उल्लेख वेदों में स्थान-स्थान पर दृष्टिगोचर होता है। सब प्राणी एक ही परमात्मा की संतान होने के कारण परस्पर भाई-भाई हैं, सारी पृथ्वी एक समान माता है व सारा मानव समाज एक परिवार है

''समानी व आकुतिः
समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा
वः सुसहासति ।। *ऋ 10/191/4*

अर्थात् हे मनुष्यों! तुम सबके संकल्प समान हों, तुम्हारे हृदय मिले हुए हों, तुम्हारे मन समान रूप से निर्मल तथा परस्पर मानयुक्त हों जिससे तुम्हारा प्रेमपूर्ण सहयोग व सह-अस्तित्व हो सके।

एक विश्व शासन की आवश्यकता

वेदों में एक साम्राज्य व चक्रवर्ती राज्य का विचार कई स्थानों पर आया है 'चक्रवर्ती राजा'- यह शब्द तो वेदों में नहीं मिलता, किंतु सम्राट्, एक राष्ट्र, साम्राज्य आदि शब्द कई मंत्रों में पाए जाते हैं।

इन उद्धरणों से उन लोगों को जो साम्राज्यवाद के विरुद्ध भाषण और नारे सुनने के अभ्यस्त हैं, कुछ

आश्चर्य होगा। क्या वेदों में भी आजकल के साम्राज्यवाद का प्रतिपादन है जो अत्याचार और स्वच्छंद शासन का प्रतीक है। यह तो बड़ी आक्षेप योग्य बात है।

इस विषय में निवेदन है कि जिस साम्राज्य की निंदा यथार्थ है, वह पाशविक बल से दूसरों पर उनकी इच्छा के विरुद्ध लादा हुआ शासन है। उदाहरणार्थ महाभारत के समय युधिष्ठिर से पूर्व जरासंध भारत के एक बड़े भाग का सम्राट् था। उसके साम्राज्य का साधन था पाशविक बल।

योगिराज श्री कृष्ण के अपने जीवन का लक्ष्य भारत को जरासंध के फंदे से छुड़ाना था। उसे आर्य साम्राज्य या दूसरे शब्दों में आत्म-निर्णय के मौलिक सिद्धांत पर आधारित भारतवर्ष के छोटे-बड़े एक राष्ट्र, बहुराष्ट्र, संघ श्रेणी, सभी प्रकार के राष्ट्रों के संगठन (Common Wealth) की छत्रच्छाया में लाना निश्चित किया। यह वह गुरुभार था जिसके वहन का बीड़ा श्रीकृष्ण ने उठाया।

'साम्राज्य' शब्द महाभारत आदि ग्रंथों में दो अर्थों में प्रयुक्त हुआ है। इसका एक अर्थ तो वही है जो अंग्रेजी शब्द 'इम्पीरियल' का। इसमें कई राज्य मिलकर किसी महान् सम्राट के अधीन होते हैं। ऐसा साम्राज्य जरासंध का था जैसे कि ऊपर दिखाया गया है। 'साम्राज्य' शब्द का एक और अर्थ है जिसे अंग्रेजी में कोमन वेल्थ Common Wealth व राज्य संघ शब्द से प्रकट किया जाता है। इसके उदाहरण के तौर पर धर्मराज युधिष्ठिर के साम्राज्य को ले सकते हैं।

अतः यह स्पष्ट है कि वेदों में जिस साम्राज्य का निर्देश है, वह उच्छृंखल, स्वच्छंद शासन नहीं जिसकी इम्पीरिएलिज्म (साम्राज्यवाद) के नाम पर निंदा की जाए। यह स्वेच्छा से अनेक राज्यों व संघों का धर्म रक्षार्थ और सारी प्रजा के हित के लिए स्थापित राज्य है। इसे अँग्रेजी के शब्दों में ऐम्पायर (साम्राज्य) नहीं, कोमन वेल्थ नेशन कह सकते हैं।

विश्व शासन की कल्पना

वर्तमान काल के अनेक भारतीय और पाश्चात्य मनीषियों ने संसार के सब पक्षों के परस्पर सहयोग के आधार पर विश्व शासन की कल्पना की है।

इस विश्वसंघ के विषय में अँग्रेजी के कवि जॉन एडिंगटन साइमंड की निम्नलिखित सुंदर हृदयंगम रचना के साथ लेखक ने अपने विश्वसंघ विषयक लेख का उपसंहार किया है जो उल्लेखनीय है।

These things shall be, a loftier race,
Than ever the world hath known shall rise
With flames of freedom intheir souls,
And light of knowledge in their eyes,
Nation with nation, land with land,
Unarmed shall live as comrades free,
In very heart and brain shall throb,
The pulse of one fraternity.

'अब तक संसार ने जितना कुछ जाना है उससे उच्चतर मानव जाति प्रादुर्भूत होगी। जिसकी आत्माओं में स्वतंत्रता की ज्वाला प्रदीप्त होगी और जिसके नेत्रों में ज्ञान की ज्योति होगी। राष्ट्र के साथ राष्ट्र, देश के साथ देश बिना शस्त्रों के परस्पर स्वतंत्र मित्र और साथी के समान रहेंगे। एक भ्रातृभाव व बंधुता का स्पंदन प्रत्येक मस्तिष्क और हृदय में होगा।' भगवान् करे कि इस कवि की उच्च भावना शीघ्र ही संसार में मूर्त रूप धारण करे। किंतु यह तभी होगा जब लोग विश्व प्रेम और परस्पर हार्दिक सहयोग विषयक वैदिक भावनाओं को पूर्णतया क्रियात्मक रूप देंगे।

संसार के समस्त धर्मग्रंथों में केवल वेद ही हैं जो 'वसुधैव कुटुम्बकं' की भावना से 'कृण्वंतो विश्वमार्यम्' का उद्घोष करते हैं।

(लेखक 'एकल विद्यालय फाउंडेशन' के अध्यक्ष हैं।)

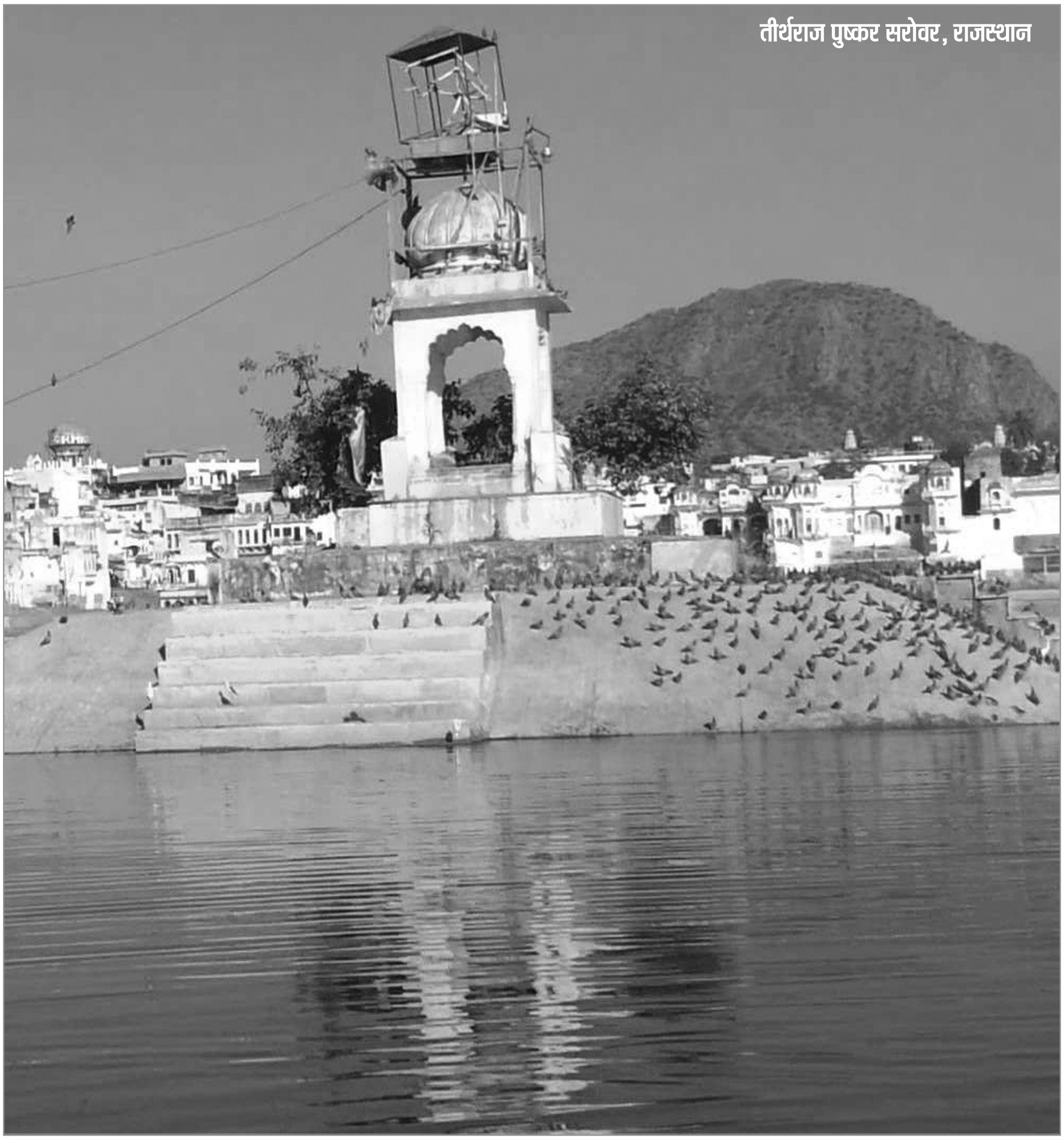

जल ही जीवन है। जल के बिना मानव जीवन की कल्पना करना ही संभव नहीं। इसीलिए भारत में जल संरक्षण की विस्तृत परंपरा रही है। दुर्भाग्य से स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जिस प्रकार विकास की अंधी दौड़ प्रारंभ हुई उसमें जल संरक्षण की इस परंपरा को भुला ही दिया गया। इतना ही नहीं अधिकारों की दौड़ में हम अपने दायित्वों को ही भुला बैठे। जल संकट का समाधान कितना सरल, सर्व-सुलभ और सस्ता है; प्रस्तुत है इस विषय पर केंद्रित आलेख–

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 27

डॉ. रवींद्र अग्रवाल

जल का क्या कोई विकल्प है?

जनवरी में तीन दिन के लिए जयपुर, अजमेर और पुष्कर जी की यात्रा पर गया था। रास्ते भर पीली खिली सरसों के खेतों और हरियाली को देख कर मन प्रफुल्लित हो गया। रास्ते में किशनगढ़ के पास 'चोरी होते पहाड़' देख कर, प्राकृतिक संपदा के प्रति चिंतित हुआ। दिल्ली से सीधे आमेर जाकर रुके। वहाँ उतरते ही मावठा झील की दुर्दशा देखी। इस झील का निर्माण 16वीं शताब्दी में राजा मानसिंह ने करवाया था। झील के किनारे लगे शिलापट से दर्शकों को पता चलता है कि इस झील के किनारे कभी महावट वृक्ष होते थे, इसीलिए इसे 'महावट' झील कहा जाता था, जिसका अपभ्रंश होकर झील का नाम 'मावठा' हो गया। यह झील आमेर महल के लिए पानी का मुख्य स्रोत थी। चारों ओर पहाड़ों की तलहटी में स्थित इस झील को देख कर सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है कि वर्षा के दिनों में पहाड़ों का पानी बह कर झील में इक्ट्ठा होता था और इससे पूरे वर्ष भर आमेर को पानी की आपूर्ति होती थी। लेकिन मावठा में आज नाममात्र का पानी है और जो है, वह भी बहुत गंदा।

अगले दिन एक स्थानीय समाचार पत्र में मावठा की दुर्दशा को लेकर एक 'फोटा स्टोरी' प्रकाशित हुई, जिसे पढ़कर मैं हैरान रह गया। एक दिन पहले मावठा को देखकर अनुमान लगाया था कि संभवतः पर्याप्त वर्षा न होने के कारण मावठा पूरा नहीं भरा, लेकिन यह फोटो स्टोरी तो कुछ दूसरी ही कहानी बयाँ कर रही थी। स्टोरी इस प्रकार है–

'बंद पाइप लाइन हो चालू तो फिर निखरे आमेर का आकर्षण'

''**जयपुरः** आमेर का मावठा सूखने के कगार पर है। 10 साल पहले यह सूखी तब पत्रिका के अभूतपूर्व जलम् अभियान के तहत

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 28

इसकी सफाई की गई थी। सरकार ने प्रवासी सम्मेलन कराया तब बीसलपुर का पानी लाने के लिए 2.50 करोड़ रुपये की लागत से बरी से मावठा तक तीन दिन में भूमिगत पाइप लाइन बिछाई गई थी। इससे 40 हजार लीटर पानी प्रति घंटा आने लगा। बाद में पानी की आवक बंद कर दी गई।''

यह समाचार स्वयं मावठा के दुर्भाग्य की पूरी कहानी सुना रहा है। जिस झील में कभी पहाड़ों से वर्षा का पानी एकत्र होता था और आमेर की प्यास बुझाता था, वह झील आज स्वयं प्यासी है और उसकी प्यास बुझाने के लिए सरकार ने दिखावटी तौर पर अस्थायी व्यवस्था की। एक स्वाभाविक प्रश्न यह है कि पहाड़ों से मावठा में आने वाले पानी का मार्ग क्यों अवरुद्ध हुआ? कौन है इसका अपराधी? अजमेर जाते समय इस फोटो स्टोरी को पढ़ते-पढ़ते अजमेर पहुँच गए।

अजमेर में 'अन्ना सागर' देख कर वह हैरानी और

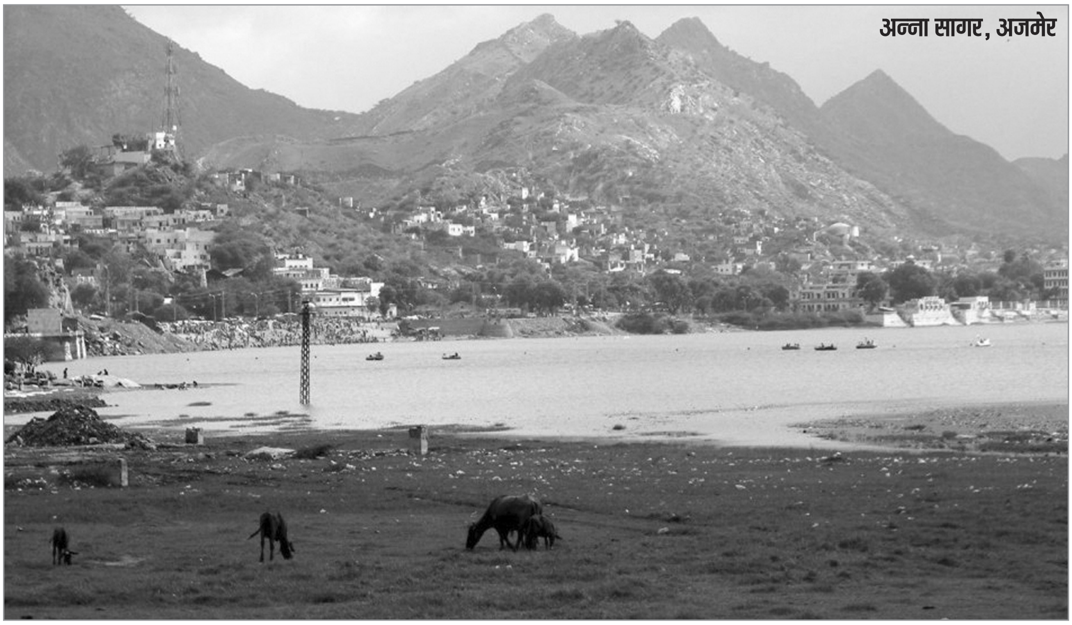

अन्ना सागर, अजमेर

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 29

बढ़ गई जो मावठा को देख कर हुई थी। अन्ना सागर का निर्माण सम्राट पृथ्वीराज चैहान के पिता राजा अरणो रा आनाजी ने कराया था। निर्माण कार्य 1135 में प्रारंभ होकर 1150 में पूर्ण हुआ। इसका विस्तार 13 किलोमीटर की परिधि में है और झील अतिक्रमण का शिकार है। एक तरफ इसके किनारे की भूमि पर अतिक्रमण कर बनाए गए आलीशान भवन और दूसरे किनारे पर डाला जा रहा मलबा और कूड़ा अन्ना सागर के दुर्भाग्य की कहानी सुना रहे हैं। 2015 में राजस्थान उच्च न्यायालय ने एक जनहित याचिका की सुनाई करते हुए अजमेर नगर निगम को निर्देश दिए थे कि झील के क्षेत्र को अधिसूचित कर इसे अतिक्रमण मुक्त करें। इसके तीन वर्ष पूर्व उच्च न्यायालय के ही एक निर्देश पर इसकी परिधि तय की जा चुकी है। इसके बावजूद वहाँ अवैध रूप से बसी कालोनियों को नियमित भी कर दिया गया। इसी उपेक्षा के कारण जो अन्ना सागर कभी अजमेर के लिए पानी का स्रोत था वह आज भी अतिक्रमण का शिकार है और इसका पानी गंदा है।

अकेले अन्ना सागर ही क्यों पवित्र तीर्थ पुष्कर सरोवर का पानी भी बहुत गंदा है। जिस पुष्करराज में दूर-दूर से श्रद्धालु अपने पुरखों का तर्पण करने आते हैं, उस पुष्कर का जल आज आचमन करने योग्य भी नहीं है। इसी कारण यहाँ स्नान करने की अभिलाषा से जाने के बावजूद, केवल अपने ऊपर पानी की कुछ बूँदें छिड़क कर ही पितरों को जल देकर संतोष करना पड़ा। पितर संतुष्ट हुए या नहीं, ईश्वर जाने।

जयपुर की मानसागर झील अपने जल महल के कारण विश्व प्रसिद्ध है। सावई जयसिंह ने इसका निर्माण 1799 में कराया था। रोज शाम के समय इसके किनारे मेला-सा लग जाता है। परंतु इसके गंदे पानी से आती बदबू ने नाक पर रुमाल रखने के लिए मजबूर कर दिया।

सैंकड़ों-हजारों वर्ष पूर्व बनवाई गई झीलों और सरोवरों की दुर्दशा की यह स्थिति अकेले राजस्थान में ही नहीं वरन् दिल्ली के पड़ोस में ही अरावली की पहाड़ियों में स्थित 'सूरज कुंड' की भी है। आज भले ही सूरज कुंड को, प्रतिवर्ष यहाँ आयोजित किए जाने

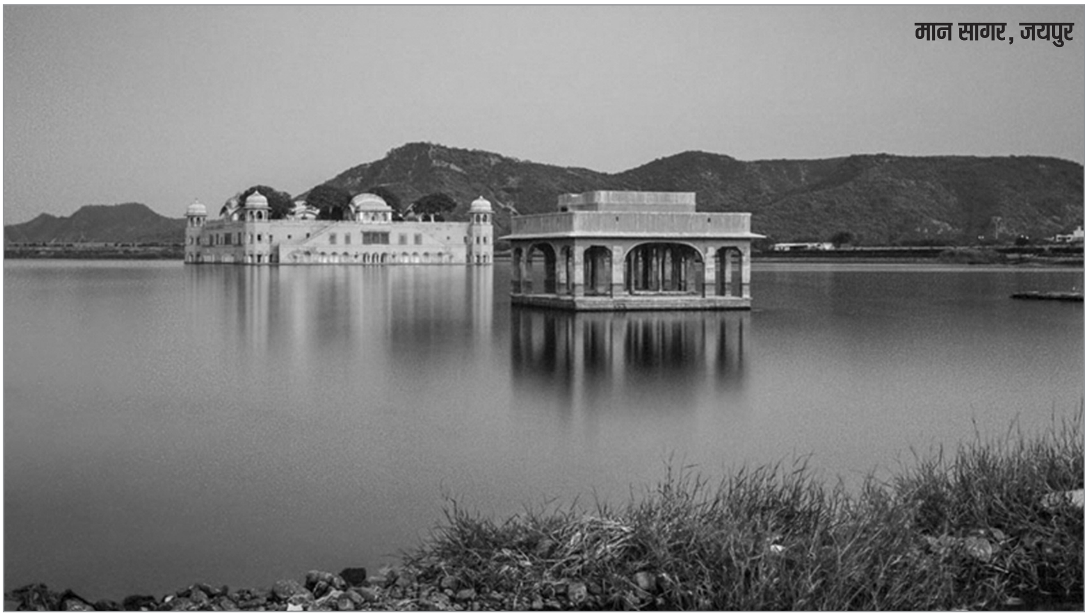
मान सागर, जयपुर

वाले सरकारी मेले के कारण जाना जाता हो, लेकिन लगभग एक हजार वर्ष पूर्व दसवीं शताब्दी में इसका निर्माण तोमर वंश के राजा सूरजपाल ने कराया था। इस कुंड का निर्माण अर्द्धवृताकार रूप में हुआ है। इसके तीन ओर सीढियाँ बनी हैं और एक ओर पास की पहाड़ियों से पानी आने का रास्ता छुटा हुआ है, जिससे वर्षा होने पर कुंड पानी से भर जाता था। लेकिन पिछले कई वर्षों से यहाँ पानी एकत्र न होने के कारण सूरजकुंड अपनी दुर्दशा पर आँसू बहा रहा है।

श्रीनगर की डल झील की कहानी भी इन्हीं झीलों और सरोवरों वाली है। जो प्रकृति की अनुपम देन डल झील श्रीनगर के लोगों की आजीविका का एक प्रमुख साधन रही है, उस पर होने वाला अतिक्रमण और उसका मलवे के डलावघर के रूप में प्रयुक्त किया जाना इस बात का द्योतक है कि हम अपने संसाधनों के प्रति और स्वयं अपने प्रति भी कितने असंवेदनशील हो गए हैं।

क्यों हुई जल स्रोतों की यह दुर्दशा? यह प्रश्न इसलिए पूछने के लिए बाध्य हैं क्योंकि नित्यप्रति जल संकट की कहानियाँ सुनने और पढ़ने में आती हैं। कहा जा रहा है कि अगले विश्व युद्ध का मुख्य कारण जल संकट होगा। इसके बावजूद भी हम अपने जल स्रोतों के प्रति असंवेदनशील क्यों हो गए? कहीं ऐसा तो नहीं कि स्वतंत्रता प्राप्त करने के उपरांत विकास की अंधी दौड़ में हम उधार की विदेशी तकनीक और धन के मोह में पड़ कर अपनी संपदा, प्राकृतिक संसाधनों, तकनीकी कौशल और परिश्रम की उपेक्षा कर बैठे? कहीं ऐसा भी तो नहीं कि विदेशी चकाचौंध में हम अपनी प्रतिभा और ज्ञान की अवहेलना करने लगे? कहीं ऐसा तो नहीं कि जब देश के विकास का दायित्व हमारे कंधों पर आया, तो हम यह मान बैठे कि अब तो हम सब तरह से आजाद हैं और विकास की जिम्मेदारी तो बस सरकार के कंधों पर है और हमें सब सुविधाएँ उपलब्ध कराने का काम भी सरकार का ही है? यह

प्रश्न इसलिए सामने आ खड़ा हुआ क्योंकि स्वतंत्रता प्राप्त करने से पूर्व हम पानी, ईंधन, प्रकाश, स्वास्थ्य और रोजगार आदि जैसे महत्त्वपूर्ण विषयों में सरकार पर आश्रित नहीं थे। कहा जाए तो हम अपनी इन आवश्यकताओं की पूर्ति स्वयं अपने प्रयासों से करते थे। इस प्रकार हम इन मामलों में स्वतंत्र और स्वावलंबी थे। लेकिन स्वतंत्रता के सात दशक बाद हम पानी, रसोई गैस, बिजली, स्वास्थ्य और नौकरी आदि के लिए सरकार के आश्रित हैं। इस प्रकार क्या इन 70 वर्षों में हमारी अपनी स्वतंत्रता और स्वावलंबन का क्षरण नहीं हुआ है? स्वतंत्रता के बाद हम अपने अधिकारों के प्रति तो सजग व सचेत हो गए, लेकिन अपने दायित्वों को भुला बैठे।

अपने दायित्वों को भुला देने और अपनी मौलिक आवश्यकताओं के लिए शासन के मुखापेक्षी होने का ही दुष्परिणाम है कि जो जल स्रोत कई शताब्दियों तक पानी की हमारी आवश्यकता को पूरा करते रहे, हमने गिने दिनों में ही उनकी उपेक्षा कर दी, इतना ही नहीं विकास के नाम पर इन्हें डलावघर मानकर और इनमें कूड़ा-कचरा भर कर वहाँ अवैध कब्जे कर अपने आलीशान भवन खड़े करने में ही गौरव की अनुभूति करने लगे!

दुर्भाग्य की बात है कि हमारे जिन पुरखों ने स्वयं के अपने कौशल, संसाधन और परिश्रम से ऐसे जल स्रोतों का निमार्ण किया जो सदैव जल से लबालब भरे रहते थे और हर परिस्थिति में शताब्दियों तक जल की हमारी आवश्कता की पूर्ति करते रहे, उन्हें हमने पिछड़ा, अनपढ़ व गंवार मानकर उनके कार्यों की उपेक्षा कर दी और इसके स्थान पर उधार की विदेशी तकनीक और पैसे को प्रधानता देते हुए उनकी नकल करने को ही विकास मान बैठे। वस्तुतः वास्तविकता के धरातल पर यह विकास का छलावा ही सिद्ध हुआ। यही कारण है कि स्वतंत्रता के सात दशक के अंदर ही हम भीषण जल संकट के भँवर में फँस गए।

कल्पना कीजिए कि कहाँ तो कई शताब्दियों तक जल की हमारी आवश्यकता को पूरा करने वाले जल स्रोत और कहाँ इनकी उपेक्षा करने के कारण कुछ ही दशकों में उत्पन्न हुआ जल संकट अब सुरसा की तरह मुँह फैलाए हमारे सामने खड़ा है, जिसके दुष्परिणाम स्वरूप हमे आये दिन पानी के कारण होने वाले संभाावित विश्व युद्ध की चेतावनी सुनने-पढ़ने में आती हैं।

भारतीय सनातन परंपरा में जिस 'जल' को पिलाना पुण्य समझा जाता रहा है और इस पुण्य को कमाने के लिए 'प्याऊ' लगाने की अटूट परंपरा रही है, उसी 'जल' को अब अरबों रुपए कमाने के कारोबार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया, जिस पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कब्जा है। दिल्ली में ही स्थान-स्थान पर स्थापित 'प्याऊ' को षड्यंत्रपूर्वक तोड़कर वहाँ पानी का कारोबार प्रारंभ कर दिया जाता है।

यही नहीं, भारतीय सनातन परंपरा में जिस 'जल' को पिलाना पुण्य समझा जाता रहा है और इस पुण्य को कमाने के लिए 'प्याऊ' लगाने की अटूट परंपरा रही है, उसी 'जल' को अब अरबों रुपए कमाने के कारोबार के रूप में प्रतिष्ठित कर दिया गया और जल के इस कारोबार पर बहुराष्ट्रीय कंपनियों का कब्जा है। यह भी कम दुर्भाग्यपूर्ण नहीं कि भारत की राजधानी दिल्ली में ही स्थान-स्थान पर स्थापित 'प्याऊ' को षड्यंत्रपूर्वक तोड़कर वहाँ पानी का कारोबार प्रारंभ कर दिया जाता है और सामान्यजन और शासन-प्रशासन इसकी अनदेखी करता रहता है।

इन सब चिंताओं के बीच विचारणीय प्रश्न यह है कि क्या इस जल संकट का कोई समाधान संभव है या नहीं? या क्या पानी के लिए होने वाले संभावित विश्व

युद्ध में फँसना हमारी नियति बन चुका है? इन प्रश्नों के उत्तर हाँ या नहीं दोनों ही हैं और इनके उत्तर केवल हाँ या नहीं में संभव भी नहीं है। कारण स्पष्ट है कि यदि हम अब भी अपने जल स्रोतों के प्रति सजग नहीं हुए और विकास की अंधी दौड़ में, प्रकृति की इस अनुपम देन की यों ही उपेक्षा करते रहे तो कोई भी शक्ति हमें संभावित विश्वयुद्ध से नहीं बचा सकती। इसके विपरीत यदि प्रति वर्ष समय-समय पर वर्षा जल के रूप में प्राप्त होने वाली अमृत बूँदों को हम अपनी सनातन परंपरा के अनुसार सहेज कर रख पाते हैं और इसका सदुपयोग करते हैं तो विश्व की किसी भी शक्ति में इतनी सामर्थ्य नहीं कि जो हमें ऐसे किसी भी संकट में फँसा सके।

क्या है जल संकट का समाधान

हमारे सामने सुरसा की तरह मुँह बाये खड़े इस संकट का समाधान ऐसा सरल, सहज और सस्ता है कि जिसके लिए न तो हमें उधार की तकनीक चाहिए और न ही उधार का पैसा। हमें बस करना है– वर्षा जल संरक्षण, वृक्षारोपण और रोकना है जल का दुरुपयोग। इसके लिए चाहिए बस दृढ़ इच्छा शक्ति।

आपको जान कर आश्चर्य होगा कि भारत में वर्षा जल और हिमपात के रूप में हमें प्रतिवर्ष 4000 अरब घन मीटर अमृत प्राप्त होता है और जल का हमारा अनुमानित वार्षिक उपयोग है 1123 अरब घन मीटर। इस आँकड़े से स्पष्ट है कि यदि हम वर्षा जल का सही प्रकार से उपयोग करें तो भारत किसी भी प्रकार के संभावित जल संकट का कुशलतापूर्वक सामना करने में सक्षम है। वर्षाजल के संबंध में यह तथ्य जानना बहुत आवश्यक है कि विश्व में जितना भी जल जहाँ कहीं भी उपलब्ध है उसमें वर्षाजल ही पूर्णतः शुद्ध होता है।

लौटाएँ पृथ्वी माँ से ऋण के रूप में प्राप्त जल

वर्षा जल का सदुपयोग करने के लिए मुख्यतः इसका संग्रह बाँधों, सरोवरों, झीलों और तालाबों में किया जाता है। इसके साथ ही वर्षा जल का भूमि में पुनर्भरण भी किया जाता है। यह एक प्रकार से पृथ्वी माता को उस जल को वापस लौटाने का प्रयास है जो जल हम वर्ष भर उसके गर्भ से प्राप्त करते हैं। होना तो यह चाहिए कि पृथ्वी माता से हम ऋण के रूप में जो जल वर्षभर निकालते हैं उसे वर्षाकाल में ब्याज सहित पृथ्वी माँ को लौटा दें, लेकिन वास्तव में हम ऐसा नहीं करते। हम अपने लालच के वशीभूत पृथ्वी के गर्भ से

पानी का वार्षिक उपयोग (अरब घन मीटर में)

प्रयोजन/वर्ष	2000	2010	2025 (अनुमानित)	2050 (अनुमानित)
घरेलू	42	56	73	102
सिंचाई	541	688	910	1072
उद्योग	8	12	23	63
ऊर्जा	2	5	15	130
अन्य	41	52	72	80
योग	**634**	**813**	**1093**	**1447**

स्रोतः केंद्रीय जल आयोग

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 33

पानी तो निकालते हैं लेकिन जो जल हमने ऋण के रूप में प्राप्त किया है उसे लौटाने की पूरी तरह उपेक्षा करते हैं, जिसका दुष्परिणाम यह हो रहा है कि पूरे देश में भूजल स्तर लगातार गिरता जा रहा है। केंद्रीय जल आयोग के अनुसार हम अपनी जरूरत का लगभग 50 प्रतिशत भूजल से प्राप्त करते हैं, जबकि पृथ्वी माँ को इसका 10 प्रतिशत भी वापस नहीं करते। यह बिलकुल ऐसी ही स्थिति है कि कोई व्यक्ति आवश्यकता के समय अपने पुरखों के बैंक खाते से पैसे तो निकालता रहे, लेकिन जब उसके पास पैसा आए तो वह उसे बैंक खाते में वापस न करे, जिसके कारण एक दिन ऐसा आता है कि पुरखों द्वारा खोले गए बैंक खाते में कुछ नहीं बचता। ऐसी ही कुछ स्थिति धरती माँ के गर्भ में सदियों से जमा पानी की भी होती जा रही है। यही कारण है कि आज से 30-40 वर्ष पूर्व जहाँ 15-20 फुट की गहराई पर पानी मिल जाता था अब वहाँ 100 फुट पर भी पानी नहीं मिल पाता। परिणामस्वरूप किसानों को 4-5 वर्ष बाद अपने नलकूप और अधिक गहराई में लगाने पड़ते हैं।

भूगर्भ से पानी निकालने का क्रम यदि इसी प्रकार चलता रहा तो एक दिन ऐसा भी आएगा जब धरती माँ के गर्भ में पानी समाप्त हो जाएगा। तब हम क्या करेंगे? ऐसी स्थिति न आए इसके लिए आवश्यक है कि हम ऐसी व्यवस्था करें कि जिससे वर्षा होने पर वर्षाजल स्वतः भूमि में चला जाए और वह इधर-उधर व्यर्थ न बहे। वर्षा होने पर इधर-उधर व्यर्थ बहने वाला पानी कई बार निचले क्षेत्रों में भर कर या बाढ़ के रूप में हमारे लिए भीषण आपदा का कारण भी बनता है। इसलिए बाढ़ के रूप में आई वर्तमान आपदा और भविष्य में भूजल समाप्त होने से उत्पन्न होने वाली आपदा के निवारण का एकमात्र उपाय यही है कि हम भूजल पुनर्भरण को अपने जीवन का अनिवार्य अंग बना लें। हमारा प्रयास होना चाहिए कि पूरे वर्ष जितना जल हम धरती माँ से उधार लेते हैं उसे वर्षाकाल में ब्याज सहित लौटा दें।

गिरता हुआ भूजल स्तर आज पूरे देश के लिए चिंता

भारत में जल की उपलब्धता और उपयोग

वार्षिक जलवर्षण, हिमपात सहित		4000 अरब घन मीटर
नदियों में उपलब्ध जल		1869 अरब घन मीटर
नदियों के जल का वार्षिक उपयोग		690 अरब घन मीटर
समुद्र में चला जाता है नदियों का जल		1179 अरब घन मीटर
अनुमानित वार्षिक उपयोग		1123 अरब घन मीटर
नदियों से प्राप्त जल		690 अरब घन मीटर
भूमिगत जल		433 अरब घन मीटर
जल की उपलब्धता	2001 में	1816 घन मीटर
प्रति व्यक्ति /प्रति वर्ष	2004 में	1731 घन मीटर
	2008 में	1633 घन मीटर
	2010 में	1588 घन मीटर

स्रोतः केंद्रीय जल आयोग

का विषय है। इसीलिए सरकार ने 'डार्क जोन' घोषित किए गए क्षेत्रों में भूजल के दोहन को प्रतिबंधित कर दिया है और भवन निमार्ताओं के लिए भूजल पुनर्भरण अनिवार्य कर दिया है। ग्राम पंचायतें और किसान भी अपने स्तर पर भूजल पुनर्भरण में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं। ग्राम पंचायतें यदि गाँवों में स्थित तालाबों का ठीक प्रकार से रखरखाव करें और बरसात प्रारंभ होने से पहले गर्मियों में तालाबों से मिट्टी निकलवाएँ और तालाब में पानी आने के रास्तों को साफ करा दें तो बरसात में तालाब लबालब भर सकेंगे। तालाब भरने से गाँव के जल स्तर में सुधार होगा। इसी प्रकार यदि किसान अपने खेत में जल संरक्षण की व्यवस्था कर सकें तो, उनके खेत के जल स्तर में सुधार होगा, इससे उन्हें सिंचाई के लिए कम पानी की आवश्यकता होगी और उपज बढ़ेगी। बड़े किसान इस प्रकार की व्यवस्था करने की पहल कर सकते हैं। देश में कई किसान ऐसे हैं जिन्होंने अपने खेतों में वर्षा जल संग्रह कर खेती में क्रांतिकारी बदलाव किए हैं।

ऐसे ही एक किसान हैं महाराष्ट्र में रायगढ़ जिले के करजत गाँव निवासी अशोक गायकर। ये अपने कुछ मित्रों के साथ मिलकर पहाड़ों से घिरी 60 एकड़ जमीन पर खेती कर रहे हैं। खेती के लिए इन्होंने पहाड़ों से बहकर आने वाले वर्षा जल को संरक्षित करने के लिए चेक डैम व तालाब बनवाया। कम पानी से अधिक उत्पादन लेने के लिए वे बूँद-बूँद पद्धति को अपनाया। वे वहाँ चीकू, आम, आँवला आदि की बागवानी भी कर रहे हैं। उन्होंने एक डेयरी भी विकसित की है, जहाँ 10 भारतीय नस्लों की गायों का संरक्षण व संवर्धन कर रहे हैं। इनके गोबर से गोबर गैस व कम्पोस्ट बनाते हैं जिसका उपयोग जैविक खेती के लिए होता है। पूरा फार्म जैविक है, इसलिए रासायनिक खेती के मुकाबले पानी की आवश्यकता भी कम है। इस फार्म को इन्होंने 'वन देवता फार्म' नाम दिया है। जो किसानों के लिए आकर्षण का केंद्र बन गया है।

वन देवता फार्म में पहाड़ों के बीच चेक डैम बनाकर विकसित खेती। इन्सेट में अशोक गायकर।

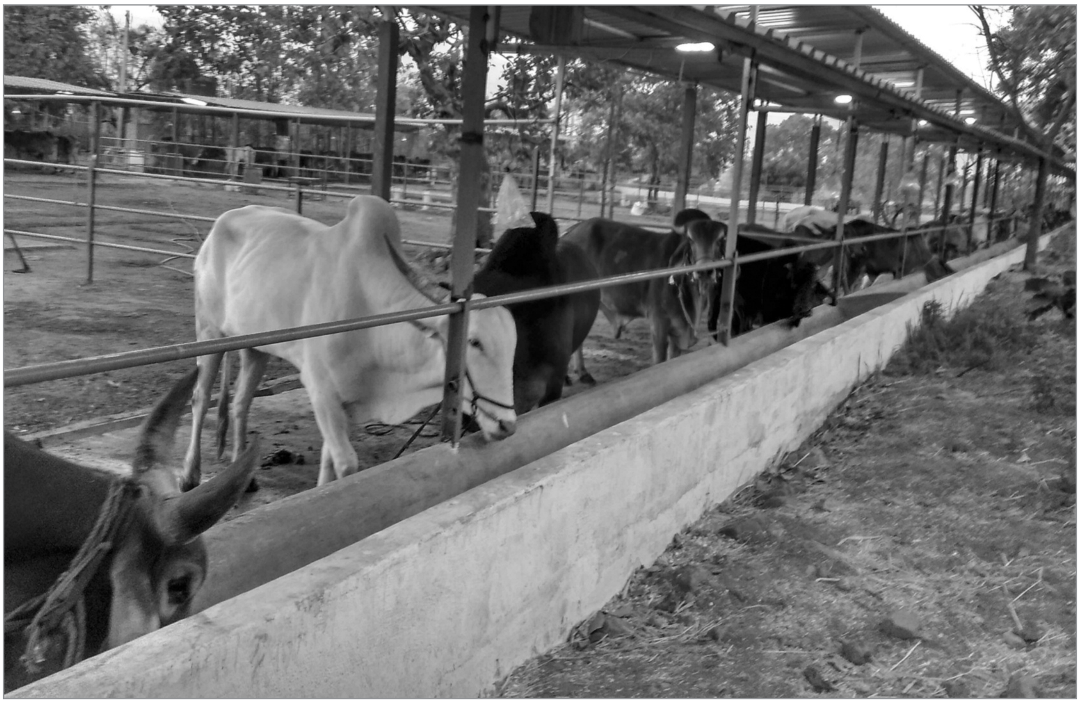

वन देवता फार्म में स्थापित गौशाला में भारतीय नस्लों की गायों का संरक्षण

यदि गाँव में किसानों के पास अधिक जमीन नहीं है तो वे यह सोच कर कि उनके पास जमीन इतनी नहीं है कि जिससे कि वे अपने खेत में जल संरक्षण कर सकें, इस महत्त्वपूर्ण कार्य से मुँह न मोड़े। वे भी जल संरक्षण के यज्ञ में अपना सहयोग कर सकते हैं। इसके लिए करना बस इतना है कि वे अपने क्षेत्र के कुछ किसानों के साथ मिल कर सामुदायिक आधार पर जल संरक्षण कर सकते हैं। महाराष्ट्र के ही लातूर जिले के वनवासी क्षेत्र के गाँव बारीपाड़ा के किसान चेतराम पवार ने ऐसे ही सामुदायिक अभियान से क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव कर दिया। पहले जहाँ एक फसल भी कठिनाई से होती थी अब वहीं पूरे वर्षभर खेती होती है, जिससे किसानों की आमदनी बढ़ी और अब वे किसी की दया पर निर्भर नहीं रहे।

बारीपाड़ा गाँव पहाड़ी क्षेत्र है। जहाँ स्वाभाविक रूप से पानी का संकट रहता था, परंतु चेतराम पवार ने वनवासी कल्याण आश्रम की प्रेरणा व सहयोग से इस क्षेत्र को जल संकट से मुक्ति दिला दी। काम आसान नहीं था लेकिन सामुदायिक भावना संकट पर भारी पड़ी। 'सामुदायिक जल संवर्धन कार्यक्रम' से वर्षा जल संरक्षण के लिए तालाब व चेक डैम बनाए गए और वर्षाजल संग्रहित किया गया। इससे जल स्तर बढ़ कर 20 फुट ऊँचाई पर आ गया। अब 'सामुदायिक जल स्थापन कार्यक्रम' के अंतर्गत सामुदायिक आधार पर सौर पंप लगाए जा रहे हैं। गत वर्ष अप्रैल में प्रारंभ हुए इस कार्यक्रम में पाँच गाँवों के 132 किसानों के 32 ग्रुप बनाकर सौर पंप लगाए गए हैं। एक ग्रुप में 6 किसान हैं।

श्री पवार ने बताया कि वर्षा जल संरक्षण से जल संकट समाप्त हो गया है। क्षेत्र के किसान 100 एकड़ से अधिक में स्ट्राबेरी के साथ ही करेला, भिंडी, बैंगन व मिर्च आदि सब्जियों की भी खेती कर रहे हैं। उनका

लातुर जिले के बारीपाडा गाँव में सामुदायिक जल संवर्धन कार्यक्रम के अंतर्गत विकसित खेत। इन्सेट में चैत राम पवार

कहना है कि किसी भी प्रकार के संकट के समाधान के लिए विकास की वर्तमान अवधारणा बदलनी होगी। इसके लिए सरकार पर निर्भरता की सोच त्याग कर स्वयं ही आगे बढ़ना होगा, तभी सही अर्थों में व्यक्ति व समाज और देश का विकास होगा।

शहरों में जल संरक्षण

गाँव ही नहीं शहरों में भी जल संरक्षण के लिए कार्य करने की बहुत संभावनाएँ हैं। पुराने कुंओं व भवनों की छतों से भी वर्षाजल संरक्षण का महत्त्वपूर्ण कार्य किया जा सकता है। वास्तव में विकास की अंधी दौड़ और बढ़ते शहरीकरण के जाल में फँस कर हमने शहरों में उन कुँओं की उपेक्षा कर दी जो सदियों से हमारी प्यास बुझाते रहे हैं, जिसका दुष्परिणाम यह हुआ कि ये कुएँ कचरे और गाद से अट गए। बढ़ते जल संकट से चिंतित उदयपुर के चिकित्सक डॉ. पी.सी. जैन ने दो दशक पूर्व ऐसे कुओं और जल स्रोतों के जीर्णोद्धार का बीड़ा उठाया जो उपेक्षा के शिकार हैं। डॉ. पी.सी. जैन के दो दशकों के प्रयासों से अभी तक उदयपुर शहर के ही करीब 2000 परिवार, संस्थान, स्कूल और यहाँ तक कि सरकारी कार्यालय अपने-अपने भवनों की छतों पर वर्षा जल को संरक्षित कर अपने सूख चुके नलकूपों, ट्यूबवैलों, कुओं आदि को फिर से जीवित करने में सफल रहे हैं। इन प्रयासों से आज न केवल उदयपुर में भूजल स्तर बढ़ा है, बल्कि वहाँ एक लाख से अधिक लोग शुद्ध जल पी रहे हैं। इन प्रयासों का एक सुफल यह भी हुआ कि राजस्थान वनवासी कल्याण परिषद् के जिस कार्यालय में गर्मी के मौसम में हर साल पानी का भीषण संकट खड़ा हो जाता था। इसलिए रोज टैंकर मँगवाने पड़ते थे, जिनमें काफी पैसा खर्च होता था, क्योंकि यहाँ बड़ी संख्या में वनवासी छात्र रहकर अपनी पढ़ाई करते हैं। जब वहाँ डॉ. जैन के आग्रह से बोरवेल पर रिचार्ज सिस्टम लगाया गया तो एक ही वर्ष के अंदर वहाँ टैंकर मँगवाने की जरूरत ही नहीं पड़ी।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 37

डॉ. पी. सी. जैन

डॉ. जैन को वर्षाजल संरक्षण की यह प्रेरणा एक समाचारपत्र में मध्य प्रदेश के देवास में जल संरक्षण के लिए किए जा रहे सफल प्रयास का समाचार पढ़ने से मिली थी।

वैसे जल संरक्षण की दृष्टि से राजस्थान बहुत पहले से जागरूक रहा है। यहाँ वर्षा जल संरक्षण की बहुत समृद्ध परंपरा रही है। यहाँ अधिकतर घरों में वर्षा जल संरक्षण हेतु टैंक हुआ करते थे जिन्हें स्थानीय भाषा में 'टाँका' कहते हैं। इनमें जो जल संग्रहित होता था वही पूरे साल इस्तेमाल होता था। जोधपुर और जयपुर के बहुत से पुराने मकानों में इस प्रकार के 'टाँके' आज भी देखे जा सकते हैं। बहुत से 'टाँके' आज भी इस्तेमाल हो रहे हैं। जयपुर में इस पद्धति को 'चौका' पद्धति कहा जाता है, किंतु दुर्भाग्य से नई पीढ़ी इस समृद्ध जल संरक्षण पद्धति को लगातार नजरअंदाज करती जा रही है। हालाँकि वे यह तो मानते हैं कि जल संरक्षण की प्राचीन पद्धतियाँ बहुत समृद्ध थी और वे ही वास्तव में वर्तमान जल संकट का सही समाधान हैं। यह दुर्भाग्य की ही बात है कि हमने अपनी ऐसी पेयजल व्यवस्था की उपेक्षा कर दी जो सदियों से, विपरीत परिस्थितियों में भी, पूर्णतः खरी रही और हम आधुनिकता के चक्रव्यूह में उलझ कर जलसंकट के जाल में फँस गए।

घर पर वर्षाजल संरक्षण बहुत सरल है। प्रायः हम

राजस्थान में वर्षा जल संरक्षण के लिए टांका की समृद्ध परंपरा ।

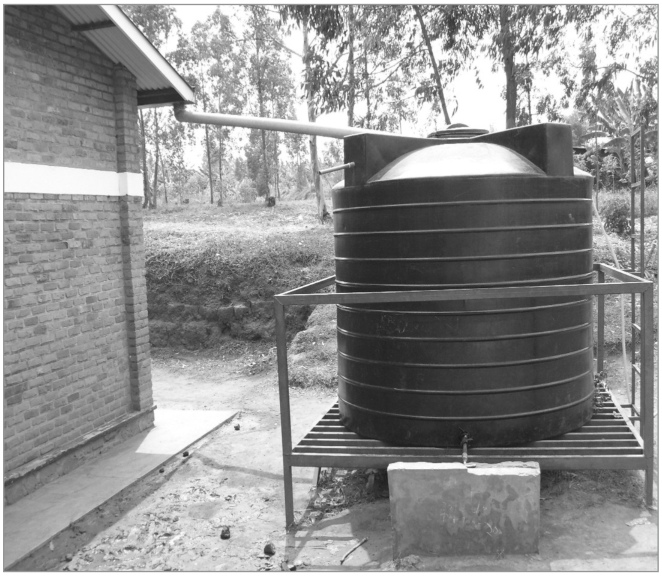

ऐसे कर सकते हैं अपने घर की छत से वर्षा जल संरक्षण

देखते हैं कि वर्षा के दिनों में घर की छत पर जो बर्तन आदि रखे रहते हैं उनमें थोड़ी देर की वर्षा में ही पानी भर जाता है। इससे स्पष्ट है कि यदि घर की छत पर जल संग्रहित करने का प्रयास किया जाए तो बड़ी मात्रा में पानी संग्रहित किया जा सकता है।

नदियों पर चेक डैम

भारत में नदियों की विस्तृत शृंखला है। इनमें से अधिकांश नदियाँ सदानीरा हैं और कुछ ऐसी हैं जिनमें केवल बरसात के दिनों में ही पानी रहता है। पृ. 32-33 पर संलग्न तालिका-1 व 2 से स्पष्ट है कि भारत में प्रतिवर्ष जल की जितनी आवश्यकता है उससे चार गुना अधिक जल प्रकृति प्रतिवर्ष वर्षाजल के रूप में हमें उपलब्ध कराती है। यही नहीं नदियों में उपलब्ध दो तिहाई जल समुद्र में बह जाता है। स्पष्ट है कि नदियों में बहकर जाने वाले इस जल की जितनी भी मात्रा को संग्रहित कर सकना संभव हो उतना ही भूजल स्तर में सुधार होगा और जल संकट को नियंत्रित किया जा सकेगा। नदियों के जल को संग्रहित करने का एक तरीका नदियों पर बड़े बाँध बनाना है। इसके अतिरिक्त नदियों पर छोटे बाँध व चेक डैम बना कर भी जल संग्रहित किया जा सकता है, जिन्हें बनाने में धन भी अपेक्षाकृत कम खर्च होता है और बड़े बाँधों के कारण होने वाले संभावित खतरों का भी संकट नहीं रहता। यह व्यवस्था विकेन्द्रीकृत होने के कारण छोटे स्तर पर अधिक कारगर रहती है।

गुजरात के राजकोट निवासी मनसुख भाई सुवागिया एक ऐसे ही किसान हैं जिन्होंने नदियों पर चेक डैम बना कर जल संकट से मुक्ति पाने का अचूक उपाय किसानों को उपलब्ध कराया। श्री सुवागिया बताते हैं कि 1985 से 1989 के दौरान सौराष्ट्र में भयंकर सूखा पड़ा था। ऐसे में खेतों में कुछ भी पैदा नहीं होता था जिससे परिवार पालना मुश्किल था। गाँववाले रोजगार की तलाश में बाहर जाने लगे थे। इस स्थिति ने उन्हें अंदर तक झकझोर दिया। सूखे से निपटने के लिए उन्होंने नदी पर चेक डैम और गाँव में तालाब बनाकर वर्षाजल संरक्षित करने का निश्चय किया। इस काम के लिए सरकार से सहायता लेने का प्रयास किया तो सिर्फ आश्वासन मिलते रहे। इसके बाद उन्होंने लोगों को जलसंरक्षण के प्रति जागरूक किया। इससे जागरूकता बढ़ी और कुछ लोग साथ आए और गाँवों में चेक डैम बनाने का निर्णय लिया। चेक डैम तो सरकार की योजना से भी बन रहे थे परंतु उनकी लागत बहुत अधिक थी। एक डैम दो लाख रुपये से दस लाख रुपये तक में तैयार होता था। उनकी सोच थी कि सूखे से लड़ने के लिए एक गाँव में पाँच से पचास डैम और तालाब बनें तो ही कुछ राहत मिल सकेगी। परंतु सरकारी

योजना से इतने ज्यादा डैम बनना संभव नहीं था, इसलिए उन्होंने गाँव के लोगों के सहयोग से कंकरीट के सस्ते डैम बनाने की सोची। योजना कारगर रही। किसी ने आर्थिक सहयोग किया तो किसी ने श्रमदान।

1998-99 में पहला चेक डैम बना। तब से वे राजकोट, जूनागढ़, भावनगर, सुरेंद्र नगर व जामनगर जिलों के 300 से अधिक गाँवों में 3000 चेक डैम बनावा चुके हैं। इससे पूरे क्षेत्र में क्रांतिकारी बदलाव आ गया है। पहले जहाँ 300 से 700 फुट पर पानी मिलता था, अब वहीं जल स्तर 40 से 80 फुट की ऊँचाई पर आ गया है। 20 वर्ष पहले बनाए गए चेक डैम अभी भी कारगर है। पहले जहाँ वर्षा पर आधारित कपास, ज्वार व अरहर जैसी केवल एक फसल ली जा सकती थी अब वहीं गेहूँ, लहसुन, प्याज, धनिया व गन्ना और सब्जियों की खेती पूरे वर्षभर ली जाती हैं। इस प्रकार किसान वर्ष में दो से तीन फसलें लेते हैं। सालभर चारे की फसल लेने से पशुपालन को भी बढ़ावा मिला है। गाँव में रोजगार बढ़े हैं, किसानों की आमदनी बढ़ी है और पलायन भी रुका है। कुछ किसान पानी बचाने के लिए बूँद-बूँद सिंचाई पद्धति से भी खेती कर रहे हैं।

नदियों को बचाएँ

देश में कई नदियाँ उपेक्षा के चलते सूख गई हैं जिससे किसानों के सम्मुख जल संकट गहराने लगा। यदि इन नदियों को पुनर्जीवित किया जाए, तो जल संकट से मुक्ति मिल सकती है। महाराष्ट्र के लातूर के लोगों ने मांजरा नदी को पुनर्जीवित कर एक अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत किया है। लातुर कई वर्ष सूखे और गंभीर जल संकट के कारण सुर्खियों में रहा। पानी लूटने और सरकार द्वारा रेल से पानी भेजने की खबरें तक

राजकोट निवासी मंसूक भाई सुवागिया द्वारा बनवाया गया चेक डैम।

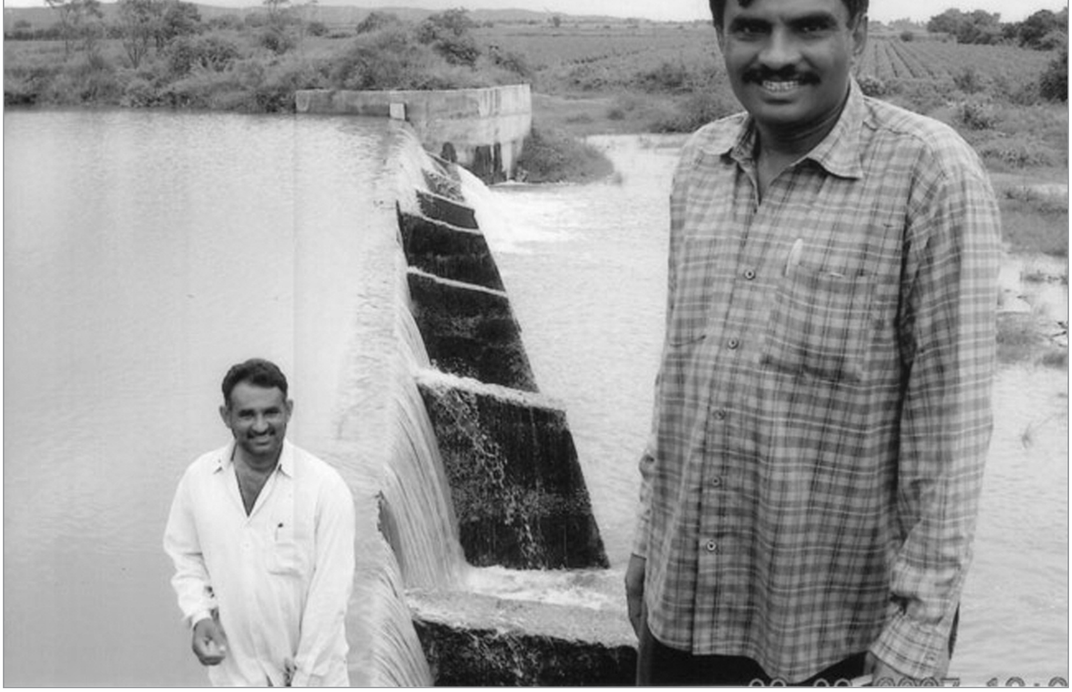

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 40

'जल युक्त लातूर' अभियान के अंतर्गत मांजरा नदी पर किया जा रहा सफाई कार्य।

आईं, किंतु शहर के लोगों ने अपने सभी राजनीतिक और वैचारिक मतभेदों को भुलाकर बिना किसी सरकारी सहायता के 18 किमी लंबी मांजरा नदी को पुनर्जीवित किया। उससे न केवल आस-पास के गाँवों का जल स्तर बढ़ा और पानी का संकट समाप्त हो गया, बल्कि यह बात फिर से साबित हो गई कि जनसामान्य एवं राष्ट्रीय महत्त्व के मुद्दों पर यदि हम एकजुट होकर खड़े हों तो देश एवं समाज की अनेक समस्याओं का आसानी से समाधान हो सकता है।

वृक्षारोपण

जल संकट से मुक्ति पाने का एक उपाय वृक्षारोपण को बढ़ावा देना भी है। कर्नाटक के हासन जिले में स्थित अनुगनलु गाँव के डॉ. मलाली गौडा एवं कृष्णमूर्ति गौडा भाइयों ने पत्थरीली पहाड़ी पर वृक्षारोपण कर ऐसा चमत्कार कर दिखाया जिसकी कल्पना भी कभी क्षेत्रवासियों ने नहीं की थी। इन दोनों ने गाँववालों को साथ लेकर एक ऐसे पहाड़ पर घना जंगल उगा दिया, जहाँ कभी घास का एक तिनका भी नहीं उगता था। इस जंगल का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि गाँव का जलस्तर जो 20 साल पहले करीब 200 फुट नीचे था; वह अब 7-8 फुट पर आ गया है। कृष्णमूर्ति बताते हैं कि इसका सुफल यह हुआ कि जब पूरे जिले में सूखा पड़ा था उस समय भी उनके गाँव में पानी का कोई संकट नहीं था। गाँव के कुंओं और ट्यूबवैलों में पर्याप्त पानी था। यह सब वृक्षारोपण व वर्षाजल संरक्षण के कारण ही संभव हो सका। इस उपलब्धि से प्रेरित होकर गाँववालों ने अब एक बायोडावर्सिटी एवं रिर्सच पार्क व औषधि उद्यान विकसित किया है, जहाँ पूरे राज्य से परंपरागत वैद्य और वनस्पति विज्ञान में रुचि रखने वाले लोग अध्ययन के लिए आते हैं।

रोकें जल की बर्बादी

बड़े शहरों में फ्लैटों में रहने वाले कह सकते हैं कि उनके पास तो अपनी छत भी नहीं है, ऐसे में वे जल संरक्षण चाह कर भी नहीं कर सकते। उनकी बात सही

कही जा सकती है, लेकिन हमें यह बात भी ध्यान रखनी चाहिए कि जल का सदुपयोग करना और उसकी बरबादी को रोकना भी जल संरक्षण की तरह ही महत्त्वपूर्ण है। आजकल कारों की धुलाई, कपड़े धोने की आटोमेटिक मशीन व नहाने में पानी का अंधाधुंध उपयोग किया जाता है। यदि घरेलू कामकाज में पानी का संयमित उपयोग किया जाए और कपड़े धोने में काम आए पानी का उपयोग शौचालय में किया जाए तो पानी की बर्बादी को रोका जा सकता है। राजस्थान के बहुत से गाँवों में अभी भी लोग चारपाई पर बैठ कर स्नान करते हैं और चारपाई के नीचे एक बर्तन रखकर उसमें पानी एकत्र कर उसका उपयोग पशुओं को पिलाने, कपड़े धोने, घर की सफाई आदि कार्यों में करते हैं। इस प्रकार वे एक ही पानी का दो-तीन प्रकार उपयोग करते हैं। पानी का उपयोग करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि पानी के बिना जीवन असंभव है और पानी का कोई अन्य विकल्प भी नहीं है। अतः जल संरक्षण करना और जल की बर्बादी रोकना हमारी प्राथमिकता होनी चाहिए।

(लेखक वरिष्ठ पत्रकार हैं।)

संदर्भ

- सोलोमन, अजय. फोटो स्टोरी. राजस्थान पत्रिका, जयपुर,18 जनवरी, 2019.
- दैनिक भास्कर, जयपुर, 24 अगस्त, 2015,
- अन्ना सागर झील, अजमेर, http://bharatdiscovery.org/india/
- कुमार, डॉ प्रमोद. (2019). आधुनिक भारत के गुमनाम समाज शिल्पी. नई दिल्ली, गांधी स्मृति एवं दर्शन समिति.
- मीणा, भरतलाल. (2018). असरकारी प्रशासन, नयी सोच, नयी दृष्टि, नई दिल्ली, प्रभात प्रकाशन.

वृक्षारोपण से कर्नाटक के अनुगनलु गाँव को जल संकट से मुक्ति तो मिली ही इसके साथ ही वहां विकसित हुआ औषधि उद्यान भी

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 42

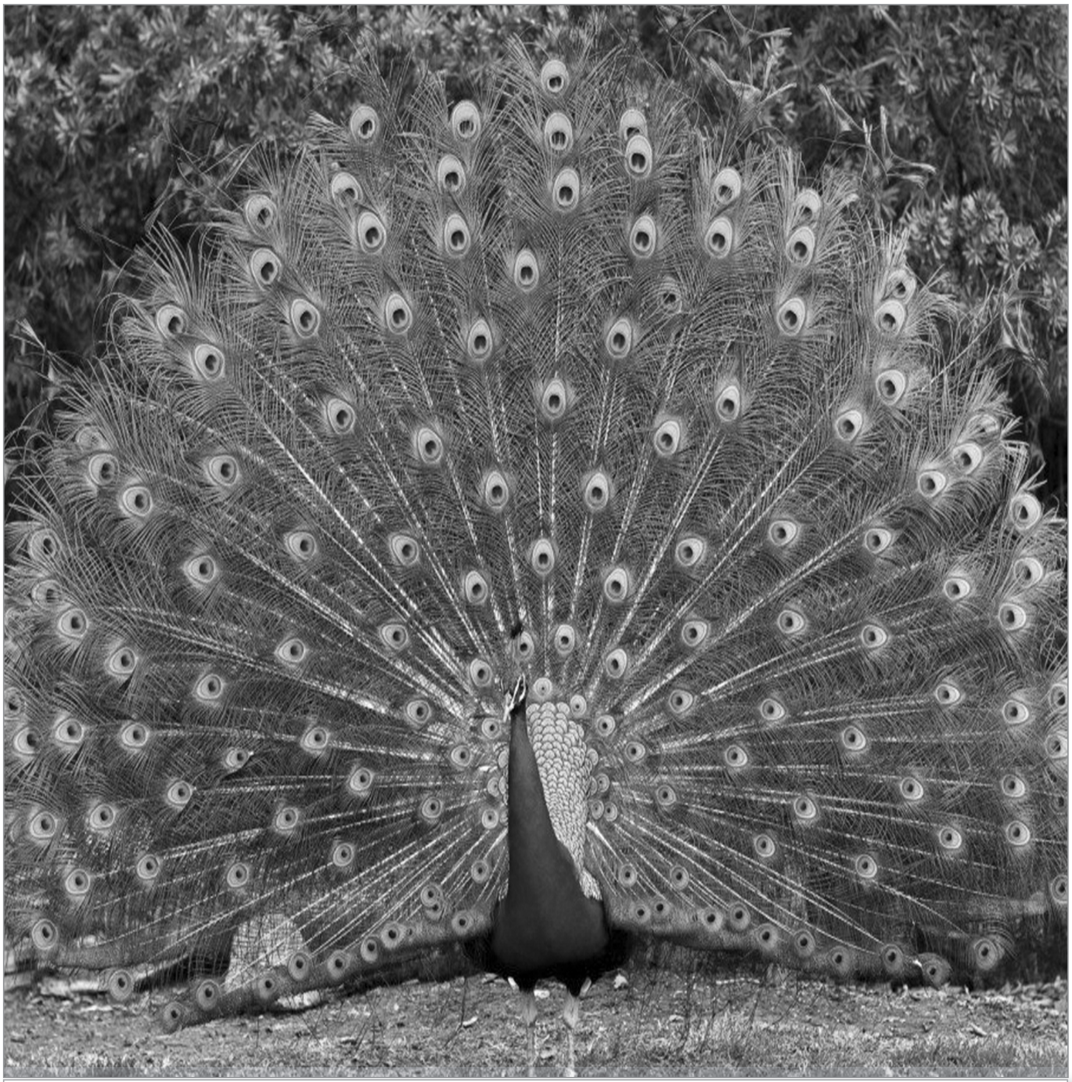

ईश्वर की बनाई इस धरती पर कोट्यवधि प्रकार के जीवों का वास है और इनके आपस के तानेबाने और संतुलन से ही यह जीवसृष्टि अनादिकाल से चली आ रही है। लेकिन पिछली कुछ सदियों से मनुष्यजाति की संख्या जितनी निर्बाध गति से बढ़ी है, उतनी ही निर्बाध गति से कई प्राणियों की संख्या में न केवल कमी आई है; अपितु कई जातियाँ या तो विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्तता की कगार पर खड़ी हैं और विनाश की यह गति प्रतिदिन, प्रतिक्षण बढ़ रही है। इसका प्रमुख कारण मानवप्राणी की वे अमानवीय हरकतें हैं जिससे इन जीवों का धरती पर रहना असंभव हो गया है पर हम शायद भूल रहे हैं कि इसी क्रम में एक दिन मनुष्यप्राणी का भी धरती पर रहना असंभव हो सकता है।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 43

डॉ. शीला टावरी

मन पाँखी की व्यथा

मई महीने की चिलचिलाती दोपहर! जब 'खरी दुपहरी जेठ की' में 'छाहौं चाहत छाँह' (छाँव भी छाँव ढूँढ रही हो) जैसी हालत हो, राजस्थान की सड़कों का वह चार घंटों का सफर बेहद गर्मी और धूल से भरा हुआ था। लाडनू पहुँचते-पहुँचते शाम के पाँच बज चुके थे और हम थक कर चूर! लेकिन जैन विश्व भारती के प्रांगण में पहुँचते ही सामने का नजारा देख कर मूड एक दम बदल गया। जर्द हरे नीम के घने झुरमुट में कोई पच्चीस-एक मोर मस्ती से झूम रहे थे। कहाँ तो शहरों में इस सुंदर प्रजाति के एक अकेले पंछी के दर्शन होना दुर्लभ...और कहाँ इतना बड़ा झुंड! मोरों के अप्रतिम लुभावने रंग, उनकी गर्वीली गर्दनें और लंबी पूँछे और सुंदर पंखों की लालित्यपूर्ण हरकतें निहारने में मैं बिलकुल खो गई थी। कितना समय निकल गया पता ही न चला। चाय के लिए आए बुलावे ने मुझे उस मयूरपंखी स्वप्निल दुनिया से बाहर निकाला।

लेकिन मेरे विचारों की कश्ती अब दूसरी ही दिशा में मुड़ चुकी थी। मोर हमारा राष्ट्रीय पक्षी है। इस सुंदर पंछी के दर्शन अब इतने दुर्लभ क्यों हो गए हैं? हमारी 'चाय पर चर्चा' इसी बात पर होती रही। मोर तो मोर, अन्य पंछियों की भी संख्या घटती जा रही है। बड़े शहरों की तो कौन कहे, अब तो छोटे शहरों में भी कौए और गौरैया जैसे पक्षी भी बहुत कम हो गए है। ऐसा क्यों हो रहा है? इसी विचार से मेरे मन का पंछी इस डाल से उस डाल पर भटकने लगा।

कभी ये पंछी हमारे जीवन का अविभाज्य अंग हुआ करते थे। माँ अपने लाड़ले को 'काऊ आ, चिऊ आ' करके उन उड़नेवाले मित्रों की संगत में खाना खिलाया करती थी। अपने प्रियतम की पाती लाने के लिए 'कागा' के पाँव सोने से मढ़ने का प्रलोभन दिया जाता था और जब यही कौआ बालक कन्हैया के हाथ से रोटी छीन कर भागता तो भक्तकवि रसखान बड़ी ईर्ष्या से कह उठते हैं, ''काग से भाग बड़े सजनी,

हरि हाथ सों लै गयो माखन रोटी।'' इन्हीं में से एक पक्षधर जटायु सीता मैया को संकटग्रस्त देखकर दशग्रीव लंकापति से लोहा ले बैठा था। ''सीते पुत्रि''- 'बेटी' कह कर उसने जनकसुता को धीरज बँधाया था और फिर उस मुँहबोली बेटी की रक्षा के प्रयास में अपने प्राणों का उत्सर्जन भी कर दिया था। आज ये सब क्या कहीं खो गए हैं?

कहते हैं, साहित्य जीवन का प्रतिबिंब होता है। प्राचीन भारतीय साहित्य में जीवन का वह दर्शन होता है जहाँ मानव का प्रकृति से संपूर्ण तादात्म्य नजर आता है। तभी तो भूमिसूक्त लिखने वाले ऋषि उदरभरण के लिए एक कंद के लिए जमीन खोदने के पहले भूमाता को उसे होने वाली वेदना के लिए क्षमा माँगते हैं; सीता की तलाश में व्यथित राम वन के सारे पशुपक्षियों को सीता का पता पूछते हैं-''हे खग, मृग, हे मधुकर श्रेणी, तुम देखी सीता मृगनयनी?'' और शकुंत पक्षियों द्वारा पाली गई शकुंतला अपने प्रियतम के घर जाते हुए भी अपने सींचे हुए लतापल्लवों और मृगशावकों से बातचीत करना नहीं भूलती।

प्राचीनतम माने जाने वाले 'ऋग्वेद' की कुछ अप्रतिम सुंदर ऋचाओं में पक्षियों के अद्‌भुत रूपकों के प्रयोग द्वारा जीवनदर्शन का विवेचन किया गया है। उदाहरण के लिए 'ऋग्वेद' की यह ऋचा देखिए–

द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया समानं वृक्षं परिषस्वजाते ।
तयोरन्यः पिप्पलं स्वदत्त्यनश्नन्नन्यो अभिचाकशीति ॥

- ऋ. 1/164/20

साथ रहने वाले मित्रों की तरह दो सुंदर पक्षी (सुपर्ण : जिसे कुछ विद्वानों ने सुनहरा गरुड़ पक्षी कहा है।) जीवात्मा और परमात्मा शरीर नाम के एक ही वृक्ष पर रहते हैं। उनमें से एक, जीवात्मा, उस वृक्ष के–याने शरीर के-कर्मरूप फलों को स्वाद ले लेकर खाता है, अर्थात् माया का आनंद लेता है; तो दूसरा-यानी परमात्मा, उन्हें न खाते हुए केवल अलिप्त रहकर देखता रहता है।

जीवात्मा और परमात्मा को दो सुंदर पक्षियों के रूप में देखने वाले ऋषियों की निरीक्षण शक्ति भी बड़ी तेज थी। ऋग्वेद में ही कबूतर और उल्लू को अशुभ लक्षणों वाले पक्षी कहा गया है और कोयल की अपने अंडे कौए के घोसले में रखने की आदत का भी उल्लेख है। इसीलिए उसे 'परभुत' अर्थात् 'परायों द्वारा पाली जाने

काऊ आ, चिऊ आ

वाली' कहा गया है। 'सामवेद' में युद्धभूमि में अपना खाद्य ढूँढ़ने वाले कङ्क (फिशिंग ईगल), सुपर्ण और गृध (गिद्ध) का वर्णन है। यजुर्वेद में भी अलग-अलग स्थानों पर कुल लगभग साठ पक्षियों के नाम आए हैं।

महाभारत में 'क्रौंचव्यूह' का उल्लेख आता है जो कि सारस पक्षियों के आकाश में उड़ते समय बनने वाले अँग्रेजी अक्षर 'व्ही' के आकार पर आधारित है। वाल्मीकि रामायण में युद्धकांड में शस्त्रों का वर्णन करते हुए भी कवि को शरद् ऋतु के निरभ्र आकाश में उड़ने वाली हंसों की कतारों की याद आती है।

'मत्स्यमहापुराण' में हिमालय स्थित अत्रि आश्रम में राजा पुरूरवा द्वारा देखे गए अनेकानेक पक्षियों के नाम दिए गए हैं, जिन्हें आज हम शायद जानते भी नहीं। इसमें स्वर्णचूड, ताम्रचूड कुड्कु मुच्ड, काष्ठकुक्कुट और न जाने कितने ही तो मुर्गों के ही प्रकार गिनाए गए हैं। मत्स्यमहापुराण 118/49-55) 'शब्दकल्पद्रुम' नामक ग्रंथ में अकेले कौए के लिए 36 पर्यायवाची शब्द दिए गए हैं। ये सब एक दम समानार्थी तो नहीं हैं। उनके रंग, चोंच का आकार, गला और पैर तथा आविर्भाव का स्थान, इनके अनुसार उनको सात प्रमुख विभागों में बाँटा गया है। पंजाब और तिब्बत में पाए जाने वाले कालेक भिन्न 'कृष्णशकुन', गर्दन में थोड़े कत्थई रंग वाले 'रक्तद्रोण' नाम के सिंधी कौए, शरीर से पूर्णतः काले परंतु चोंच का निचला एक तिहाई हिस्सा लगभग सफेद लिए हुए 'सितनीलचंचु' काक, गर्दन और छाती में भूरा रंग लिए, नित्य का बलिनैवेद्य खाने वाले घरेलू, 'बलिपुष्ट वायस' ...यह सब न केवल इन लेखकों की सूक्ष्म निरीक्षणशक्ति का कमाल है, यह उनके प्रकृति प्रेम, अध्ययनशीलता और जीवनदर्शन का भी परिचायक है। पक्षियों के रंगरूप का ही नहीं, व्यवहार का भी सूक्ष्म निरीक्षण करने वाले इन मनीषियों ने ''नराणां नापितो धूर्तः पक्षीणां तु वायसः''

इस प्रकार के मुहावरे भी प्रचलित कर दिए थे। इसी संदर्भ में कौए की तीक्ष्ण नजर के लिए 'काक दृष्टि' यह शब्द विशिष्ट अर्थ का अधिकारी हो गया और इसीलिए 'अग्निपुराण' में राजा को सलाह दी गई है कि उसे हमेशा कौए के भाँति चौकन्ना रहना चाहिए। ('काकशङ्की भवेन्नित्यम्।' *अग्नि पुराण 225/30)*

वाल्मीकि रामायण के अरण्यकांड में राम, लक्ष्मण और सीता जब पंचवटी की ओर जा रहे थे तो उनकी भेंट जटायु से हुई। अपना परिचय देते हुए जटायु ने संपूर्ण पक्षिजगत् की उत्पत्ति का इतिहास ही सामने रख दिया है। (अरण्य, 14/17-20)। पूरे रामायण महाकाव्य में मानवजाति का पशुपक्षियों से जैसा सौहार्द देखने को मिलता है, वह अद्भुत है। फिर वह जटायु हो, उसका भाई संपाति हो, महाकाय जाम्बवान जैसे रीछ, अंगद या हनुमान जैसे शक्तिशाली वानर हो या फिर सेतुबंध के समय मँडराने वाली छोटी-सी गिलहरी हो। अगर हृदय में यह सौहार्द नहीं होता तो 'क्रौंचमिथुन'' में से एक की हत्या होते देख न वाल्मीकि को इतनी वेदना होती और शायद न ही त्रिकालजयी ''रम्या रामायणी कथा'' का जन्म होता।

रामायण में जहाँ-तहाँ पक्षियों की उपस्थिति के वर्णन हैं। महाभारत और अन्य पौराणिक साहित्य भी इससे अछूता नहीं है। 'वराहमिहिर' जैसा भारी-भरकम नाम पाकर 'बृहत्संहिता' जैसा भारी भरकम नाम वाला ग्रंथ लिखने वाले कवि को भी बारिश के काले बादलों के नीचे 'व्ही' आकार में उड़ने वाली सारस पंक्तियाँ ऐरावत के सफेद हाथीदाँतों जैसी लगती हैं और बीच-बीच में चमकने वाली बिजली में उसे इन्द्र के धनुष के दर्शन होते हैं। वे कह उठते हैं--

तडिद्वैमकक्ष्यैर्बलाकाग्रदन्तैः

गोरैया

स्रवद्वारिदानैश्चलत्प्रान्तहस्तैः।
विचित्रेन्द्रचापध्वजोच्छ्राय
शाभैस्तमालालिनीलैर्वृतं चाब्दनागैः॥

(बृहत्संहिता 24/17)

वराहमिहिर कवि थे ही, वैज्ञानिक भी थे। उनके सूक्ष्म निरीक्षण से छोटी-छोटी घरेलू चिड़िया गौरैया भी नहीं छूटीं। उनका मानना था कि इनका नरपक्षी बड़ा कामुक होता है और इनकी कामक्रीड़ा के स्थान के नीचे धरती में धन या कोयला गड़ा होता है। (''तस्मिन्निधिर्भवति मैथुनमेति यस्मिन्''। - बृहत्संहिता 24/12)

हमारे इन उड़ने वाले मित्रों की यह कहानी अंतहीन है। चरक और सुश्रुत जैसे वैज्ञानिक भी इन पक्षधरों के पक्षधर रहे हैं। फिर नल-दमयंती जैसी प्रेम कथाएँ इनके बिना कैसी पूरी होतीं? कमलपुष्प की कोमल पंखुरियों पर कामिनियों के कमनीय नाखूनों से प्रेम पत्र लिखने वाले हमारे रससिद्ध कवियों ने कलहंस जैसे रूपवान् पक्षियों को युगों से प्रेम का संदेशवाहक बनाया हो, तो उसमें आश्चर्य कैसा? दुष्यंत-शंकुतला की 'रम्या' प्रेम कहानी में तो नायिका का लालन-पालन ही शकुंत नाम के पक्षियों द्वारा होता है। यहाँ पर केवल वर्षा के जलबिंदुओं पर ही जिंदा रहने वाला चातक है और चकोर का तो अस्तित्व ही चाँद की किरणों से झरने वाले अमृतबिंदुओं पर निर्भर करता है।

चींटी को भी चीनी चुगाने वाली जिस संवेदनशील संस्कृति ने 'सुविरूढमूल' अश्वत्थवृक्ष के साथ-साथ तुलसी के पौधे की भी पूजा की है, उसने अपने सदा के लिए बिछुड़े प्रियजनों को याद करते हुए कौओं को भी पहली पंक्ति में बुला कर भोजन कराने की प्रथा संभाली है, तो उसका कोई तो कारण होगा ही। पर आजकल शहरों में काक बलि के लिए कौए नहीं मिलते। कहाँ चले गए वे सब? सुबह-सुबह कलरव कर हमें नींद से जगाने वाली छोटी-सी चिड़िया- जिसके चटक, चटिका, कुलिंग, कलविंक, मयूरचटक, वनचटक, कालचटक, ग्रामचटक ...और न जाने कितने प्रकार हमारे प्राचीन साहित्य की शोभा बढ़ा रहे हैं और जिन्हें आज हम जानते तक नहीं-कहाँ खो गई वे सब? प्रकृति के साथ हमारे खिलवाड़ का ही नतीजा है यह।

ईश्वर की बनाई इस धरती पर कोट्यवधि प्रकार के जीवों का वास है और इनके आपस के तानेबाने और संतुलन से ही यह जीवसृष्टि अनादिकाल से चली आ रही है। लेकिन पिछली कुछ सदियों से मनुष्यजाति की संख्या जितनी निर्बाध गति से बढ़ी है, उतनी ही निर्बाध गति से कई प्राणियों की संख्या में न केवल कमी आई है; अपितु कई जातियाँ या तो विलुप्त हो चुकी हैं या विलुप्तता की कगार पर खड़ी हैं और विनाश की यह गति प्रतिदिन, प्रतिक्षण बढ़ रही है। पक्का बताना तो

मुश्किल होगा फिर भी एक अनुमान के अनुसार वर्तमान में प्रतिवर्ष लगभग एक लाख प्रजातियाँ इस धरती पर से विलुप्त होती जा रही हैं। अगर ऐसा ही रहा तो अगले 15 से 30 वर्षों में हाथी, गैंडा, चिंपांझी जैसे कई प्राणी भी इस धरती पर से विलुप्त हो चुके होंगे और इसी गति के चलते आगामी 100 वर्षों में पृथ्वी पर से लगभग आधे जीव विलुप्त हो जाएँगे।

कतिपय विद्वानों के मतानुसार कुछ प्रजातियों का पृथ्वी पर से विलुप्त होना यह कोई असामान्य घटना नहीं है। यह एक प्राकृतिक व्यवस्था रही है। ऐसा पहले भी होता आया है। परंतु चिंता की बात यह है कि पूर्व की अपेक्षा यह विलोपन की दर लगभग दस हजार गुना ज्यादा है। पृथ्वी के इतिहास में पूर्व में जीव-प्रजाति विलोपन के मुख्य कारण बाढ़, चक्रवात तथा ज्वालामुखी के उद्रेक जैसी प्रकृतिक आपदाएँ होती आई हैं। परंतु वर्तमान में जीवों की प्रजातियाँ लुप्त होने का प्रमुख कारण मानवप्राणी की वे अमानवीय हरकतें हैं जिससे इन जीवों का धरती पर रहना असंभव हो गया है पर हम शायद भूल रहे हैं कि इसी क्रम में एक दिन मनुष्यप्राणी का भी धरती पर रहना असंभव हो सकता है।

जीवशास्त्र की कक्षाओं में क्लासिफिकेशन पढ़ाते वक्त हमें बताया गया था कि होमो सेपियंस अर्थात् मानवप्राणी का स्थान सभी जीवों में सर्वोच्च है। फिर अँग्रेजी साहित्य की किसी कक्षा में 'मानव' नामक प्राणी का परिचय 'ईश्वर की सर्वश्रेष्ठ रचना, ईश्वर का लाड़ला पुत्र' के नाम से कराया गया। क्या कोई 'ईश्वर' ऐसा भेदभाव कर सकता है? कुछ दर्शनधाराओं का मानना है कि 'ईश्वर' ने पहले सारी जीवसृष्टि बनाई। फिर मनुष्य को बनाया और उसे कहा कि ''जाओ, यह सब तुम्हारे उपभोग के लिए है। चाहे जैसा आनंद मनाओ।'' पर हमारी संस्कृति तो ऐसी नहीं थी। ''तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः'' (''त्यागभाव से, जितना अत्यावश्यक हो उतना ही लो'') वाली इस संस्कृति ने आज ऐसा कैसे मान लिया कि यह धरती हमारे खास उपभोग के लिए ही बनायी गई है? हम चाहे जिसे मारें, चाहे जैसा कष्ट दें। सृष्टि के संतुलन की इस प्रकार अवहेलना कर हम आखिर कहाँ जाएंगे?

'भागवतपुराण' के दशम स्कंध में एक सुंदर प्रसंग आता है। गोपबालकों के साथ गायें चराते-चराते भगवान् श्रीकृष्ण वृंदावन से काफी दूर निकल आए। ग्रीष्म की तेज धूप से झुलसे हुए वे उन घने 'ब्रजवासी' वृक्षों को अपने लिए छाता बने देखकर बड़े प्रसन्न हुए। अपने साथियों को आवाज दे-देकर उन्हें वहाँ बुलाया और कहा– ''इन एक मात्र दूसरों के लिए ही जीवन धारण करने वाले परम भाग्यशालियों को देखो। आँधी, वर्षा, धूप, सर्दी, स्वयं सहते हुए वे हमें बचाते हैं। ये

वृक्ष पत्ते, फूल, फल, जड़, छाल, लकड़ी सुगंधि, गोंद, भस्म, कोयला और अंकुरों से भी लोगों को उनका अभिलषित बाँटते रहते हैं। सभी जीवों को जीवन देनेवाले इन वृक्षों का जन्म धन्य है। भगवान् वृक्षों की तुलना उन दानी सज्जनों से करते हैं जिनके द्वार से किसी को भी विमुख नहीं लौटाया जाता। *(श्रीमद् भागवत पुराण 10/22/30-34)*

इस पूरे प्रसंग में दिल को छू लेनेवाला जो एक विशेषण वृक्षों के लिए प्रयुक्त हुआ है वह है–'व्रजौकसः' अर्थात् 'व्रजवासी'–'व्रज के निवासी'। वृक्षों को व्रज की नागरिकता का यह सम्मान स्वयं श्रीकृष्ण द्वारा दिया गया है। आज भी व्रज में निवास बड़े भाग्य से मिलता है ऐसी मान्यता है। भक्तराज रसखान द्वारा इस भाव पर अनुपम रचनाएँ लिखी गई हैं। भारतीय मानस के लिए वृक्ष केवल एक 'लिविंग बीइंग' कभी नहीं रहे। वे हमारे सखा हैं, परमभाग्यशाली मित्र हैं और दातृत्व सिखाने वाले गुरु हैं। समता का नारा लगाने वाली मानवजाति को पृथ्वी पर रहने वाले सभी जीवजंतुओं के समान अधिकार को स्वीकार करना होगा। और कुछ नहीं तो अपने स्वंय के स्वार्थ के लिए, अपने ही अस्तित्व को बचाने के लिए। अंत में सबके हित में ही मानवजाति का हित है। पृथ्वी का बढ़ता तापमान और घटती जैवविविधता के संकेत को समय रहते समझ लें। नहीं तो जैसे-जैसे अन्य जीवों का ह्रास होगा, मानव स्वयं विनाश की ओर अग्रसर होता जाएगा।

(लेखिका पर्यावरणविद् और शिक्षाविद् हैं।)

कदम्ब : 'व्रजौकसः'

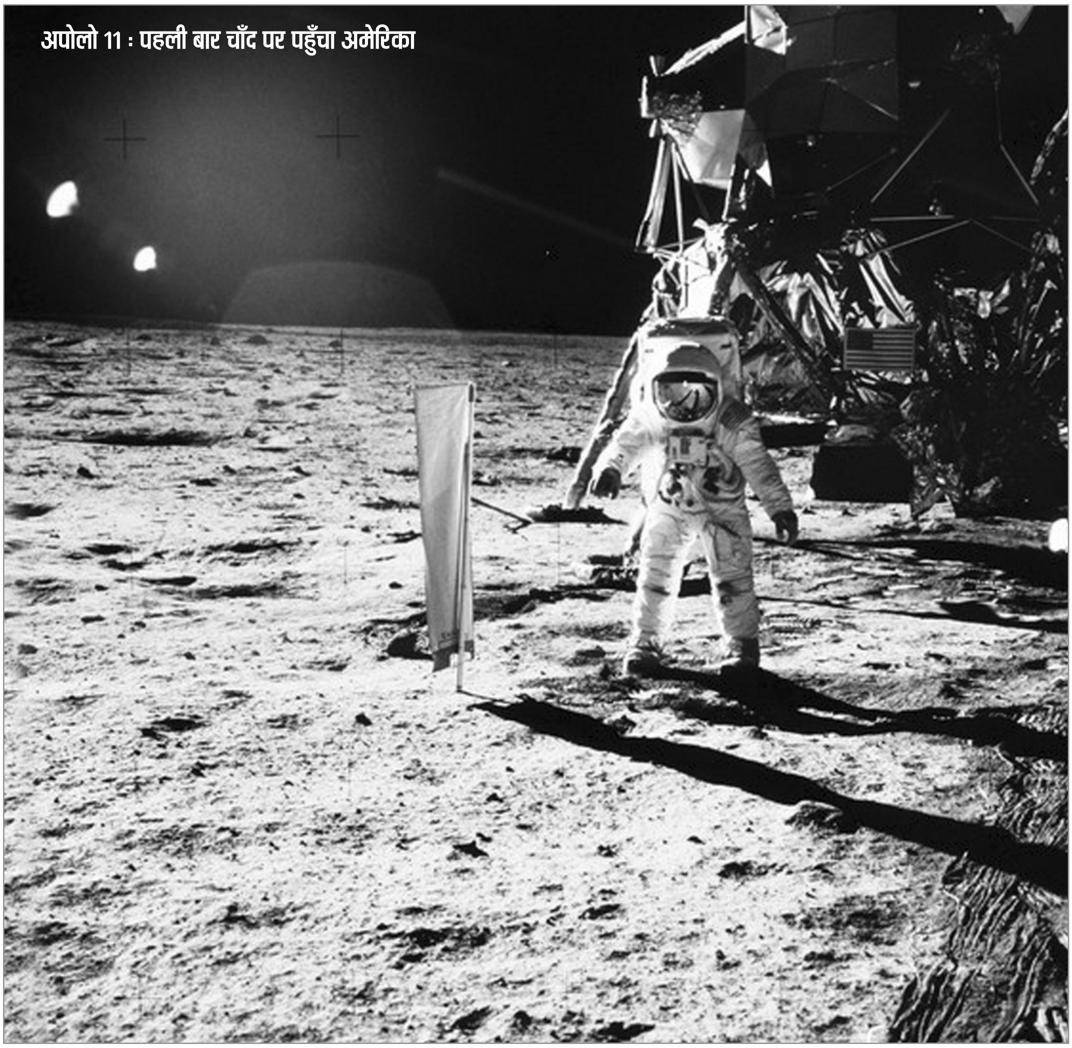

चंदा मामा सदियों से मानव के लिए एक रहस्य लोक रहा है और मानव है कि वह इसके रहस्यों को जानने-समझने के लिए सदैव प्रयत्नशील। इन प्रयासों को पहली सफलता तब मिली जब 1969 में अमेरिकी च्रंदयान अपोलो-11 चंद्रमा पर उतरने में सफल रहा। भारत भी इन रहस्यों को सुलझाने में पीछे नहीं है उसने अक्तूबर-2008 में चंद्रयान-1 चाँद पर भेजा और वहाँ पानी की उपलब्धता का पता लगाया। चाँद के रहस्यों को जानने के लिए चीन, रूस और जापान भी पीछे नहीं है। इन सब प्रयासों से चंद्रमा की स्वतंत्रता खतरे में पड़ती दिख रही है। हो भी क्यों ना! मानव मंगल तक पहुँचने के लिए चंद्रमा को एक पड़ाव के रूप में प्रयुक्त जो करना चाहता है। प्रस्तुत है चंद्रमा के रहस्यों को उजागर करता डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल का शोधपूर्ण आलेख

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 51

डॉ. ओम प्रभात अग्रवाल

चंदा मामा की स्वतंत्रता संकट में

बच्चों को मीठी नींद में सुला देने वाले चंदा मामा, अंधेरी रातों को शीतल उजास से भर देने वाला चाँद तथा विरहणियों के हृदय को दग्ध कर देने वाला चंद्रमा मनुष्य की पहुँच से सदैव बहुत दूर रहने के कारण सदैव रहस्य की चादर में लिपटा रहा है। वह घटता बढ़ता क्यों है, उसमें दिखने वाले धब्बे की वास्तविकता क्या है, उस पर पानी और हवा है अथवा नहीं– ये सारे ही प्रश्न सामान्य जन को आदिकाल से उद्वेलित करते रहे हैं। विचित्रताओं के कारण ही भारतीयों ने तो उसे भगवान् का दर्जा तक दे डाला और अनेक पौराणिक कथाओं की रचना कर डाली।

विज्ञान की दृष्टि में चाँद की उत्पत्ति पृथ्वी के गर्भ से हुई और दूरी भी चार लाख किलोमीटर से कम ही है। वास्तविकता में चाँद उपग्रह है, ग्रह नहीं, क्योंकि वह पृथ्वी के ही चारों ओर घूमता है, सूर्य के नहीं। इस भ्रमण में चाँद का एक भाग 15 दिन सूर्य के समक्ष होता है और एक अन्य, दूसरे पक्ष में। एक भाग ऐसा भी है जो पृथ्वीवासियों की दृष्टि से सदैव ओझल ही रहता है। ऐसा इसलिए क्योंकि यह उपग्रह अपनी धुरी पर उसी गति से घूमता है जिस गति से वह पृथ्वी की परिक्रमा करता है। चूंकि चाँद सूर्य से उधार लिए हुए प्रकाश से ही प्रकाशित होता है, इसीलिए उसका जो भाग सूर्य के समक्ष नहीं होता, वह अंधकार में डूबा होता है। इस भाग में ताप-180^0 से. तक गिर जाता है जबकि सूर्य के समक्ष वाला भाग 117^0 से. तक गर्म हो सकता है क्योंकि यहाँ, पृथ्वी के विपरीत, पराबैंगनी किरणों के साथ सूर्य की प्रकाश-ऊर्जा अपनी संपूर्णता में उपस्थित होती है। इतना अवश्य सिद्ध हो चुका है कि चाँद शुष्क नहीं है। वहाँ जल न केवल ध्रुवों पर हिम के रूप में है, बल्कि उसकी ऊपरी सतह के नीचे भी प्रचुर

मात्रा में द्रव (मीठा जल) रूप में विद्यमान है।

चाँद तक पहुँचने की इच्छा तो सृष्टि के प्रारंभ से ही मानव की रही है। पुरा कथाओं में इसके प्रमाण उपलब्ध हैं। आधुनिक काल में इसके वास्तविक प्रयत्न 1969 में प्रारंभ हुए जब अमेरिका का अपोलो- 11 यान नील आर्मस्ट्रांग को चंद्रलोक पर उतारने में सफल रहा। भारत भी चाँद तक पहुँचने में पीछे नहीं रहना चाहता था। इसीलिए भारत की अंतरिक्ष शोध एजेंसी इसरो ने अक्तूबर 2008 में चंद्रयान-1 प्रक्षेपित किया। इसका मून इंपैक्ट प्रोब चंद्रतल पर उतर भी गया। इस अभियान ने चाँद से संबंधित अनेक आश्चर्यजनक

इसरो ने पीएसएलवी -2 से चाँद पर भेजा चंद्रयान -1

तथ्य उद्घाटित किए और अमेरिकी अंतरिक्ष एजेंसी नासा से भूरि-भूरि प्रशंसा प्राप्त की। अब अप्रैल, 2019 में चंद्रयान-2 का प्रक्षेपण नियत है जो चंद्रलोक की सैर और अन्वेषण के लिए एक स्वचालित गाड़ी वहाँ उतार देगा। चीन, जापान, रूस आदि देशों ने भी चंद्रलोक की खोज के लिए अनेक सफल प्रयास किए हैं। बल्कि चीन ने तो चाँग ई-4 यान के माध्यम से इसी वर्ष जनवरी, 2019 में एक चाँदगाड़ी (मानवरहित) को चाँद के उस छिपे हुए भाग (जिसे चंद्रमा का अंधकार पूर्ण भाग कहा जाता है) पर उतार दिया है जो मानव की दृष्टि के सामने कभी पड़ता ही नहीं। यह चाँदगाड़ी घूम-घूम कर इस भाग में जल तथा खनिजों की उपस्थिति संबंधी अन्वेषण करेगी। ऐसा लगता है कि चाँद पर मानव का आक्रमण शीघ्र ही संपूर्ण हो जाएगा और उसे उपनिवेश बना कर उस पर बसने का उनका सपना साकार होने की संभावना अत्यधिक बढ़ जाएगी।

चाँद के रहस्यों के उद्घाटन में यथेष्ट सफल होने के बाद अब मनुष्य उसे मुँह चिढ़ाने की भी तैयारी कर रहा है। वर्ष 2022 में चीन कम से कम तीन कृत्रिम चंद्रमाओं को अंतरिक्ष में स्थापित करने के लिए प्रयासरत है। ये कृत्रिम चाँद उसी प्रकार सूर्य प्रकाश को पृथ्वी पर प्रक्षेपित करेंगे जैसे कि ईश्वरीय पिंड। यही नहीं मानव उन पर इस प्रकार का नियंत्रण रखेगा कि ये चाँद पृथ्वी के उसी भाग को आलोकित करें जिन्हें वह चाहेगा। इस प्रकार पसंद के भागों में बिजली के प्रकाश की वर्तमान व्यवस्था काफी सीमा तक बेमानी हो जाएगी।

चाँद को पृथ्वी का उपनिवेश बनाने के मार्ग में सबसे बड़ी बाधा है वहाँ का अकल्पनीय ताप परिवर्तन। किसी भी भाग विशेष पर ताप कभी 117^0 से. होता है तो कभी -180^0 से.। परंतु प्रकृति ने इस समस्या से

भारत ने चंद्रयान -1 से चाँद की सतह पर भेजा मून इंपेक्ट प्रोब

निपटने का प्रबंध स्वयं कर रखा है। वर्ष 2007 में जापानी यान कगूया ने खोज कर ली थी कि वहाँ गहरी सुरंगें हैं। एक सुरंग की लंबाई तो 1.7 किलोमीटर और चौड़ाई 120 मीटर अनुमानित की गई। इन सुरंगों में ताप सदैव 20^0 से. के लगभग बना रहता है। स्पष्ट है कि मानव इन प्राकृतिक शरणस्थलियों में अपनी बस्ती बसा सकता है।

परंतु मानव जीवन के लिए केवल सहनीय ताप ही नहीं, बल्कि जल और ऑक्सीजन की भी आवश्यकता होती है। सहृदय प्रकृति ने इसका भी प्रबंध कर रखा है। भारत के चंद्रयान-1 ने सिद्ध कर दिया है कि जल न केवल चंद्र ध्रुवों पर हिम के रूप में बल्कि उसकी ऊपरी सतह के नीचे द्रव रूप में भी प्रचुर मात्रा में है। और जल (H_2O) है तो ऑक्सीजन भी उसके अणुओं की विभक्ति (एक सरल प्रक्रिया) द्वारा प्राप्त की जा सकती है। वहाँ एक खनिज ओलीवीन भी उपलब्ध है जिसमें ऑक्सीजन संयुक्तावस्था में उपस्थित है। इससे भी ऑक्सीजन विलग कर लेना कठिन कार्य नहीं होगा।

जीवन के लिए ऊर्जा भी आवश्यक है और इसका भी प्रबंध चाँद पर है। वहाँ हीलियम-3 गैसों का विशाल भंडार है। यही गैस परमाणु ऊर्जा का अच्छा स्रोत सिद्ध होगी। यह ज्ञात तथ्य है कि इस गैस के परमाणु परस्पर संलयन द्वारा स्वच्छ और रेडियोधर्मिता से हीन ऊर्जा उपलब्ध करा सकते हैं। ज्ञातव्य है कि इस संलयन में कोई भी रेडियोधर्मी आइसोटोप नहीं बनता और इसीलिए इस से ऊर्जा प्राप्ति में रेडियोधर्मी प्रदूषण फैलने का कोई खतरा नहीं होता। इस प्रक्रिया की तकनीकी पर कार्य प्रगति पर है।

अब सब कुछ है तो कालांतर में इन सुरंगों में कृषि की व्यवस्था भी की ही जा सकेगी। चाँद पर और भी अनेक उपयोगी खनिज उपलब्ध हैं जिनसे लोहा, एल्यूमीनियम, क्रोमियम, मैग्नीशियम, कैल्शियम आदि मूल्यवान धातुएँ निष्कर्षित की जा सकती हैं। ऐसे में वहाँ पर औद्योगिक सक्रियता का पनपना (ऊर्जा तो उपलब्ध हो ही जाएगी) भी अलभ्य लक्ष्य नहीं होगा।

लीजिए सब कुछ तो है - जल, ऑक्सीजन, ऊर्जा, उपयोगी धातुएँ, आरामदेह शरणस्थली (जहाँ वातानुकूलन अनावश्यक होगा) आदि। ऐसी दशा में चाँद पर औपनिवेशिक बस्तियाँ क्यों नहीं बस सकतीं? निश्चय ही चंदा मामा की स्वतंत्रता संकट में है।

सच तो यह है कि चंदा मामा को उपनिवेश बनाना असली लक्ष्य नहीं है। असली लक्ष्य है मंगल ग्रह पर मनुष्य को उतारना और वहाँ मानव बस्तियाँ स्थापित करने की संभावना को तलाशना। वैज्ञानिकों का विचार है कि रहने के लिए मंगल एक अधिक आरामदेह ग्रह सिद्ध हो सकता है। परंतु मंगल तक मानव को पहुँचाने में बहुत-सी तकनीकी कठिनाइयाँ हैं। इन्हीं का हल प्राप्त करने का माध्यम चाँद का इस प्रकार का अन्वेषण हो सकता है। बात कुछ भी हो चंदा मामा का संकट तो वैसा का वैसा बना रह जाता है।

(लेखक महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय, रोहतक के रसायन विभाग के पूर्व अध्यक्ष एवं इंडियन साइंस कांग्रेस के रसायन खंड के पूर्व अध्यक्ष हैं।)

ग्रीष्म ऋतु में शरीर में पानी की कमी होने लगती है जिससे कमजोरी व बेचैनी महसूस होती है। इससे बचने के लिए अपने आहार-विहार पर विशेष ध्यान देना चाहिए। प्रस्तुत लेख में वरिष्ठ आर्युवेदाचार्य डॉ. सुनील आर्य बता रहे हैं कि गर्मियों के मौसम में क्या खाएँ-पिएँ और अपनी दिनचर्या को किस प्रकार निर्धारित करें जिससे आप स्वस्थ्य रहें।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 55

डॉ. सुनील आर्य

ग्रीष्म ऋतु में कैसा हो आहार-विहार

सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाती पृथ्वी पर बदलते मौसम को समझें तो एक वर्ष में छह ऋतुएँ होती हैं– शिशिर, वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद और हेमंत। यूँ तो भारत में वर्ष में ज्यादातर समय गर्मी ही रहती है लेकिन वसंत ऋतु के बाद ग्रीष्म ऋतु प्रारंभ होती है जो की मई से लेकर जून तक समझी जाती है। ग्रीष्म ऋतु में सूर्य की तेज किरणों के प्रभाव से धरती पर ताप बढ़ता है जिसके चलते खुश्की या रुक्षता बढ़ने लगती है जिससे शरीर के साथ-साथ पेड़-पौधों, वनस्पति, नदी-तालाबों का भी जलीयांश सूखने लगता है। शरीर का जलीयांश कम हो जाने से कमजोरी, बेचैनी, ग्लानि, अनुत्साह, थकान आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं और प्यास ज्यादा लगती है। यह ग्रीष्म ऋतु का स्वाभाविक गुण धर्म है जिसके फलस्वरूप कफ का शमन व वायु का संचय होने लगता है। अगर इन दिनों में वायु को बढ़ाने वाले आहार (भोजन), विहार (रहन-सहन) का सेवन करते रहें, तो यही बढ़ी हुई वायु ग्रीष्म ऋतु के बाद आने वाली वर्षा ऋतु में ज्यादा बिगड़ कर अनेक बीमारियों को पैदा करती है।

इसलिए ग्रीष्म ऋतु के दुष्प्रभावों से बचने के लिए ऋतु अनुकूल भोजन व रहन-सहन अपनाना चाहिए।

आहार (खान-पान)

'स्वादु शीतं द्रवं स्निग्धमन्न पानं तदाहितम्' (चरक संहिता) के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में मधुर, रस युक्त तथा शीतवीर्य

(ठण्डी तासीर वाले) गुण वाले, तरल तथा स्निग्ध (चिकनाई युक्त) द्रव्यों का सेवन करना चाहिए ताकि शरीर में शीतलता व तरावट बनी रहे जिसकी ग्रीष्म काल में शरीर को सख्त जरूरत होती है।

इसके लिए दूध-चावल की खीर, दूध, घी, मीठे चावल, सत्तू का घोल, नींबू की शिकंजी, दूध-पानी की मीठी लस्सी, आँवले का मुरब्बा, गुलकंद आदि का सेवन करना हितकारी होता है। 'भजेन्मधुरमेवान्नं लघुस्निग्धं हिमं द्रवम्' (वाग्भट) के अनुसार ग्रीष्म ऋतु में मीठे, हलके, स्निग्ध, शीतल और सुपाच्य पदार्थों का ही सेवन करना चाहिए। ऐसे पदार्थों में ताजी चपाती (रोटी) के साथ चने की भाजी, बथुआ, चौलाई, परवल, पके लाल टमाटर, छिलका रहित आलू, हरी मटर, करेला, कच्चे केले, तरबूज के छिलके, हरी ककड़ी की शाक-सब्जी और दालों में सिर्फ मसूर की दाल या छिलके वाली मूंग की दाल का ही सेवन करना चाहिए। अरहर या चने की दाल खाएँ तो चावल के साथ खाएँ या 1-2 चम्मच शुद्ध घी में जीरा डाल कर इसका तड़का लगा कर खाएँ ताकि इन दालों की खुश्की खत्म हो जाए।

फलों में मौसमी फलों जैसे तरबूज, खरबूजा, नारियल, संतरा, मौसमी, आम, सेब, अनार, फालसे का सेवन लाभदायी है। ग्रीष्म ऋतु में दही अथवा छाछ के सेवन से बचना चाहिए, फिर भी दही का सेवन करें तो घर का जमा हुआ ताजा दही थोड़ा पानी डाल कर और अपने स्वाद के अनुसार शक्कर या नमक, भुना जीरा डाल कर खाएँ। अगर छाछ लेनी ही हो तो ताजी, मीठी छाछ में मिश्री, धनिया तथा जीरा मिलाकर कम मात्रा में लें। अन्य पदार्था में सिंघाड़ा, प्याज, नींबू, हरा धनिया, पोदीना, कच्चे आम को भून कर बनाया हुआ।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 57

मीठा पना, नींबू की मीठी शिकंजी, ठंडाई, गुलकंद, पेठा-मिठाई, आँवले का मुरब्बा, दूध-पानी की मीठी लस्सी आदि का सेवन करना चाहिए।

ग्रीष्म में आने वाली दुर्बलता, रुक्षता व जलीय अंश की कमी की पूर्ति के लिए सत्तू सबसे अच्छा है। जौ को भूनकर चक्की में पीसकर सत्तू बनाया जाता है। चने को भूनकर, छिलके अलग करके चौथाई भाग भूने हुए जौ उसमें मिलाकर बनाया गया विशेष लाभदायक होता है। इसी प्रकार चावल तथा गेहूँ का भी सत्तू बना सकते हैं। सत्तू मधुर, शीतल, बलदायक, कफ-पित्तनाशक, भूख व प्यास मिटाने वाला तथा श्रमनाशक (धूप, श्रम, चलने के कारण हुई थकान को मिटाने वाला) है।

सत्तू को शीतल जल में घी व मिश्री मिलाकर पीना चाहिए। केवल जल के साथ गर्म करके, भोजन के बाद, रात्रि के समय, दिन में दो बार सत्तू नहीं पीना चाहिए। घी न हो तो केवल मिश्री मिलाकर भी ले सकते हैं।

ग्रीष्म ऋतु में पाचन शक्ति कमजोर होने के कारण अपच, दस्त, उलटी आदि बीमारियाँ उत्पन्न होती हैं। इनसे बचने के लिए दिन में एक से दो ही बार ताजा हलका सुपाच्य भोजन करें।

अष्टाँगसंग्रह में ग्रीष्म ऋतु में बलकारक पौष्टिक पेय बताया है जिसका नाम है पंचसार। पंचसार बनाने के लिए मुनक्का, फालसा, खजूर, शहद व मिश्री को मिट्टी के बर्तन में चार गुना ठंडे पानी में भिगोकर रखें। एक घंटे बाद हाथ से मसलकर छान लें तथा हो सके तो मिट्टी के कुल्हड़ अथवा कसोरे में लेकर पीयें। यह शीघ्र शक्ति, स्फूर्ति व ठंडक देने वाला है।

गर्मियों में गुड़ का पानी भी खूब फायदेमंद है। गुड़ को एक घंटा पानी में भिगोकर पीने से गर्मी का प्रतिकार करने की क्षमता आती है।

इन दिनों में फ्रिज, कूलर का ठंडा पानी पीने के स्थान पर मटके या सुराही का पानी पीना ज्यादा स्वास्थ्यप्रद होता है।

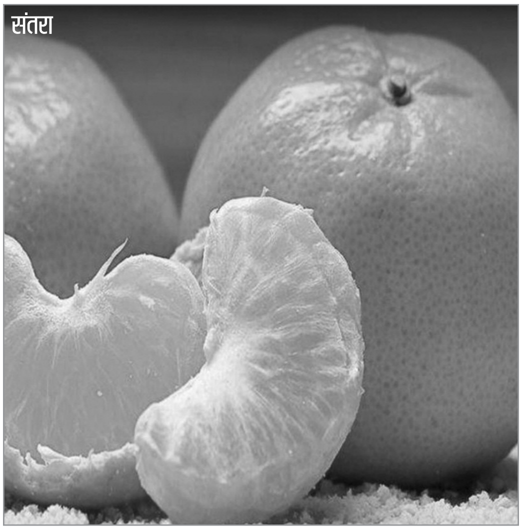

इस ऋतु में नमकीन, रूखे, बासी, तेज मिर्च-मसालेदार तथा तले हुए पदार्थ, अमचूर, अचार, इमली आदि तीखे, खट्टे, कसैले एवं कड़वे रसवाले पदार्थ न खाएँ। गर्मी से बचने के लिए बाजारू शीतपेय (कोल्ड ड्रिंक्स), आइस क्रीम, आइसफ्रूट, डिब्बाबंद फलों के रस का सेवन करने से बचें । ये पदार्थ पित्तवर्धक होने के कारण आंतरिक गर्मी बढ़ाते हैं। रक्तस्राव, खुजली आदि चमड़ी के रोग व चिड़चिड़ेपन की बीमारी को जन्म देते हैं। चाय, कॉफी, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू, गुटखा आदि का सेवन अन्य ऋतुओं की अपेक्षा ग्रीष्म में विशेष हानि करता है।

विहार (रहन - सहन)

ग्रीष्म ऋतु में पालन योग्य विहार यानी रहन सहन (दिनचर्या) की शुरुआत सुबह उठने से ही हो जाती है। सुबह सूर्योदय होने से पहले तीन काम निपटा लेने चाहिएँ। ठंडा पानी आधे से एक लीटर पी कर शौच क्रिया करना, दूसरा स्नान करना और तीसरा 3-4 किलो मीटर का पैदल घूमना और थोड़ा आसन-व्यायाम। इसके बाद आठ बजने से पहले चाहें तो नाश्ता कर लें। ग्रीष्म ऋतु में भी अन्य ऋतुओं की तरह तय समय पर ही भोजन करना चाहिए यानी भूख सहन नहीं करना चाहिए। भूख से थोड़ी कम मात्रा में खाना चाहिए और खूब चबाना चाहिए। तेल से शरीर की मालिश करके स्नान करना हितकारी होता है। इस ऋतु में कुछ लोग सुबह देर तक सोये रहना पसंद करते हैं जो शरीर, स्वास्थ्य और चेहरे की सुंदरता, खास करके आँखों के लिए हानिकारक होता है। इसलिए सुबह देर तक सोते रहना और देर रात तक जागना ठीक नहीं। ग्रीष्म ऋतु में कम से कम सहवास करें। तेज धूप में घूमना, भूखे-प्यासे घूमना, लगातार भारी श्रम करना, अति व्यायाम करना, दिन में सोना, मल-मूत्र और प्यास के वेग (इच्छा) को रोकना इन सबसे बचना चाहिए।

(लेखक वरिष्ठ आयुर्वेदाचार्य हैं।)

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 59

मनोगत

मान्यवर महोदय,

नववर्ष विक्रम संवत् 2076, श्रीराम नवमी और वैशाखी की आपको बहुत -बहुत हार्दिक शुभकामनाएँ। नववर्ष आपके एवं आपके परिवार के लिए मंगलमय हो । 'मंगल विमर्श' का अप्रैल 2019 अंक प्रबुद्ध पाठकों को समर्पित करते हुए सुखद अनुभूति हो रही है। 'मंगल विमर्श' में प्रकाशित लेखो के संबंध में प्राप्त होने वाले आपके पत्र व प्रतिक्रियाएँ हमारे लिए बहुत ही प्रेरक व मार्गदर्शक होती हैं। 'मंगल विमर्श' के जनवरी, 2019 के अंक के विषय में कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के पूर्व निदेशक डॉ. हिम्मत सिंह सिन्हा ने अपने पत्र में लिखा है कि डॉ. प्रमोद कुमार दुबे का 'समकालीन राजनीतिक प्रवृतियाँ और पं. दीनदयाल उपाध्याय' लेख अत्यंत गंभीर समस्या पर उनके शोधपरक निष्कर्षों से भरा हुआ है।

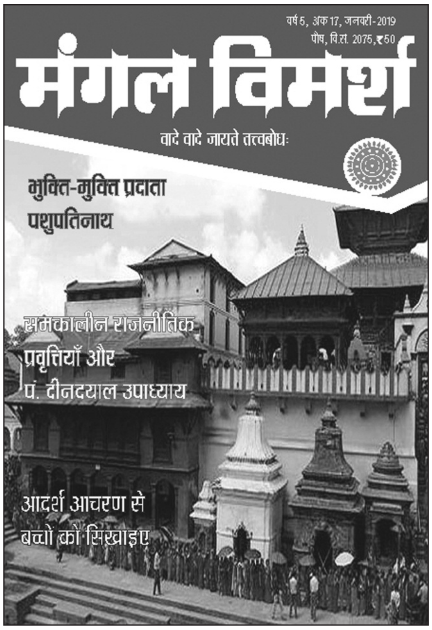

वस्तुतः यह बात सत्य है कि भारत के नवनिर्माण का दायित्व उन लोगों के हाथ में चला गया जो आज तक यह निर्णय नहीं कर पाए कि हमें देश को किधर ले जाना है क्योंकि उन्होंने भारत की आधार भूमि, राष्ट्रीय मर्यादाओं तथा सामाजिक परंपराओं को जिनका आधार हिंदू धर्म है जानने का प्रयास ही नहीं किया। इसमें सब से भयंकर आघात सेक्यूलरवाद के खोखले नारे ने पहुँचाया है। सेक्यूलर राजनीति या राजशासन तो संभव हो सकता है

परंतु सेक्यूलर समाज न कहीं दुनिया में बना है और न ही बन सकता है। 1970 में मैंने पत्रिका आर्गेनाइजर में एक लेख में लिखा था 'Secularism is the outcome of the spiritual blindness of man' इस शब्द का प्रयोग संविधान के जनक विद्वान व्यक्ति डॉ. अंबेडकर ने संविधान के अंदर कहीं भी नहीं किया है। पूरे संविधान में 'सेक्यूलरिज्म' शब्द नहीं है।

भारत के तथाकथित प्रगतिवादी नेता आज भी सेक्यूलरवाद का फटा हुआ ढोल पीट कर देश को भ्रम में डाले हुए हैं। यही भारत का दुर्भाग्य है कि जो लेश मात्र भी यह नहीं जानते कि सेक्यूलर राज्य (Secular Polity) तथा सेक्यूलर समाज (Secular Society) में क्या अंतर है। इस राजनीतिक स्टंट का निराकरण करना अति आवश्यक है, तभी सांस्कृतिक तत्त्व पुष्ट होंगे। संविधान की उद्देशिका (Preamble) में भी जहाँ सेक्यूलर शब्द 42वें संशोधन द्वारा जोड़ा गया है, वहाँ कहा गया है कि–

'भारत सेक्यूलर राज्य होगा', ऐसा नहीं कहा गया कि हम सेक्यूलर समाज की स्थापना करेंगे। सेक्यूलर समाज ऐसा ही है जैसे हाथी के सिर पर सींग। सेक्यूलर राज्य तो भारत पहले से ही है जिसके दो आधार हैं–

(i) प्रजातांत्रिक व्यवस्था कहती है ''Each is to count as one; neither more nor less than one'' राज्य सत्ता प्रत्येक व्यक्ति की 'एक वोट' की ही सहभागिता है इसमें जाति, पंथ, मत, इत्यादि के आधार पर कोई भेद 'राज्य' नहीं करता।

(ii) 'राज्य' किसी धार्मिक विश्वास, पंथ, जाति आदि के आधार पर किसी के साथ पक्षपात नहीं करेगा।

इसलिए इन दोनों प्रावधानों के होते हुए सेक्यूलरवाद का शब्द जोड़ना निरर्थक तथा अनावश्यक था जिसे राजनीतिक घपलेबाजी ही कहा जा सकता है। भारतीय समाज की रचना तो इस देश की चिति (Psyche) पर ही आधारित होगी जिसका बहुत विस्तार से विवेचन पं. दीनदयाल उपाध्याय ने अपने एकात्म मानवतावाद दर्शन में किया है। इस दृष्टि से यह लेख अति गंभीर चिंतन का परिचायक है इसलिए बहुत शलाघनीय है, सुधी लेखक बधाई के पात्र हैं।

एक अन्य लेख डॉ. चंदन कुमारी का 'हरि को भजे सो हरि का होए' आज के सामाजिक परिवेश में बहुत महत्त्व का है जबकि विकृत मनोवृत्ति के तत्त्व जातीय आधार पर विखंडन करने में लगे हुए हैं। विद्या भारती से प्रकाशित मेरी पुस्तक 'सामाजिक समरसता और हमारे संत' में उत्तर भारत के सभी संतों की वाणी से उद्धरण लेकर यही निष्कर्ष निकाला है कि सारा भक्ति आंदोलन जात-पात की खोखली दीवारों का खंडन कर 'जात पात पूछे न कोए, हरि को भजो सो हरि का होए' की समरसता का अलख जगाता रहा है। ऐसे लेखों की बड़ी आवश्यकता है, लेखिका को बधाई है। अन्य लेख भी स्तरीय हैं।

श्री लालबहादुर शास्त्री राष्ट्रीय संस्कृत विद्यापीठम् के कुलपति प्रो. रमेश कुमार पाण्डेय ने अपने पत्र में लिखा है कि 'मंगल विमर्श' त्रैमासिक पत्रिका में प्रकाशित लेख अत्यंत चिंतनपरक एवं विचारोत्तेजक होने के साथ-साथ संग्रहणीय भी हैं। पत्रिका के जनवरी, 2019 अंक में प्रकाशित सभी लेख उच्चस्तरीय हैं। तथापि 'राष्ट्रवाद : भारतीय चिंतन एवं 'भुक्ति-मुक्ति प्रदाता पशुपतिनाथ' लेख विशेष उल्लेखनीय हैं। मैं पत्रिका के प्रकाशन में कार्यरत सभी सहयोगियों को विशेष बधाई देता हूँ। प्रयागराज के ओम प्रकाश दुबे जी ने अपने पत्र में लिखा है कि अक्तूबर, 2018 अंक अत्यंत रोचक और ज्ञानवर्धक है। सभी लेख सराहनीय हैं। आपको इस उत्कृष्ट एवं उपयोगी सृजनात्मक प्रयास के लिए हार्दिक बधाई देता हूँ।

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 61

स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य में सांस्कृतिक प्रदूषण

'मंगल सृष्टि' द्वारा आयोजित की जाने वाली गोष्ठियों के क्रम में 27 जनवरी, 2019 रविवार को आयोजित 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी काव्य में सांस्कृतिक प्रदूषण' विषयक गोष्ठी में मुख्य वक्ता प्रो. ओमीश परुथी ने कहा कि संस्कृति और साहित्य का अटूट संबंध है। संस्कृति से आप्लावित होकर साहित्य अपने पाठकों को ऊर्जा प्रदान करता है और उनका मार्ग प्रशस्त करता है। साहित्य संस्कृति का दर्पण भी है और उसका रक्षक भी है, क्योंकि वह संस्कृति को आत्मसात करके काव्य के रूप में उसका सृजन करता है, उसे अनुभूति बनाता है और फिर पाठक के पास जाता है। कवि की कविता में संस्कृति अनुस्यूत रहती है। इस प्रकार जो साहित्य अपनी परंपरा और संस्कृति से जुड़ा रहता है, वही साहित्य कालजयी होता है। हमारा सौभाग्य है कि संस्कृत साहित्य में महर्षि वाल्मीकि, वेद व्यास, भवभूति तथा भक्तिकाल में गुरु नानक, सूरदास, कबीर व तुलसीदास आदि और इसके बाद स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान जयशंकर प्रसाद, निराला, मैथिलीशरण गुप्त व दिनकर आदि कवि संस्कृति से जुड़े हुए हैं और इन्होंने संस्कृति को आत्मसात कर उसे आगे बढ़ाने का महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

स्वाधीनता के बाद कविता की एक नई धारा प्रारंभ हुई जिसे 'नई कविता' के नाम से जाना जाता है। दो दशक तक चले कविता के इस दौर में अनेक आंदोलन प्रारंभ हुए जिन्होंने कविता की अनोखी व्याख्याएँ करनी प्रारंभ कर दीं, लेकिन इनमें कोई सार्थकता नहीं थी। केवल अपने-अपने खेमे गाड़ने के निरर्थक प्रयास थे। इन आंदोलनों को कभी 'अकविता' का नाम दिया गया, तो कभी 'अस्वीकृत कविता' या 'कबीरपंथी कविता', 'दादावादी कविता', 'अति यथार्थवादी कविता', 'नंगी कविता' और 'अतिकविता', 'विकविता' आदि। इतना ही नहीं, तीन कवियों– नलिन विलोचन शर्मा, केसरी कुमार और नरेश कुमार के नाम से 'नकेनवादी' कविता आंदोलन प्रारंभ किया गया। इन सब काव्यांदोलनों में महत्त्वपूर्ण बात यह देखने में आती है कि इनमें भारतीय साहित्य व संस्कृति के उच्च जीवनमूल्यों, जैसे– सत्यनिष्ठा, सेवा, सौहार्द, सद्भाव, सहानुभूति, संवेदना, सहयोग, विश्वबंधुत्व की भावना को भुलाकर नकारात्मकता, अनास्था, विरोध, अस्वीकृति, कदाचार आदि को फैलाया गया। अपनी परंपरा, संस्कृति व सभ्यता का तिरस्कार करने का भाव फैलाया गया, लेकिन समाज ने इन सब बातों को स्वीकार नहीं किया। इस कारण इन काव्यांदोलनों के कवि समाज से कट गए, उन्हें समाज से पोषण नहीं मिला जिसके कारण वे सूखते चले गए। हम देखते हैं कि जब किसी चीज में ठहराव आ जाता है और उसे कहीं से पोषण नहीं मिलता, तो उसके अंदर जड़ता आ जाती है, और इससे जब सड़ाँध पैदा होती है तो अंतर्विरोध और निराशा पनपती है। इस प्रदूषण से संस्कृति का ह्रास होने लगा। उनके कथन ऐसे लगने लगे जैसे वे कविता न कहकर अभद्र भाषा में निजालाप करने लगे। उनकी भाषा और उनके विचार अराजक हो गए। इस प्रकार स्पष्ट है कि स्वाधीनता के बाद के दो दशकों में चलाए गए इन काव्यांदोलनों ने भारतीय संस्कृति और जीवनमूल्यों के उस संदेश को पूरी तरह नकार दिया है जो संदेश महर्षि वाल्मीकि से लेकर तुलसी, सूर, कबीर, जयशंकर प्रसाद, मैथिलीशरण गुप्त व निराला आदि कवियों के काव्य में परिलक्षित है।

गोस्वामी तुलसीदास ने पारिवारिक व सामाजिक संबंधों की मर्यादा का उत्कर्ष स्वरूप जिस प्रकार प्रस्तुत किया है वह मानव जीवन को गरिमा प्रदान करता है और इसी कारण सामाजिक मूल्यों को समृद्ध करता है।

संबंधों की जो गरिमा और मर्यादा हो सकती हैं उसके जीवंत उदाहरण को उन्होंने अपने कथा नायक के रूप में मर्यादा पुरुषोत्तम राम को चित्रित किया है। भाई कैसा हो, माँ-बेटे का संबंध कैसा हो, पिता और पुत्र का संबंध किस प्रकार का हो और स्वामी व सेवक का संबंध कैसा हो इस विषय में उन्होंने जितने भी आदर्श हमारे सामने रखे वे सब के सब हमारी संस्कृति का संवर्धन करते हैं, समाज का मार्ग प्रशस्त करते हैं। गोस्वामी तुलसीदास का यह कथन''धीरज, धरम, मित्र अरु नारी । आपदकाल परखिये चारि ।।'' आज भी समाज को जो संदेश देता है वह अतीव श्रेयस्कर है।

''मेरो मन अनंत कहाँ सुख पावे, जैसे उड़ी जहाज को पंछी फिर जहाज पे आवे ।।'' सूरदास ने अपनी इन पंक्तियों के माध्यम से ईश्वर के एकमात्र संबल को प्रस्तुत किया है, वह भारतीय आध्यात्मिक चेतना का सफल प्रस्तुतीकरण ही कहा जाएगा। इसी प्रकार भक्तकवि कबीरदास ने ''जल में कुंभ, कुंभ में जल है। भीतर-बाहर पानी। फूटा कुंभ, जल जल हीं समाना, यह तथ्य कहियो ग्यानी।'' कहकर ब्रह्म और जीव की समरसता की विवेचना बहुत ही सरल शब्दों में की है। स्पष्ट है कि अध्यात्म की गहन और गंभीर बातों को समझाने का इससे सरल और उचित तरीका दूसरा कोई नहीं हो सकता। इन सब कवियों ने समाज को जो कुछ दिया वह सकारात्मक है, हमारा उन्नयन करने वाला है। कविता का आनंद ब्रह्मानंद सहोदर माना जाता है अर्थात् काव्य का आनंद ब्रह्म के आनंद के समान है। इस प्रकार जो काव्य समाज को ऊर्जा देने वाला हो वही काव्य कहलाता है। काव्य वही है जो समाज को अच्छी प्रेरणा दे और जिससे पाठक का हृदय परिवर्तन हो जाए।

यह जानना आवश्यक है कि स्वतंत्र्योत्तर काव्य में नवीनता के नाम पर जो विकृतियाँ हमारे समाने आईं वे कब, कैसे और किनके माध्यम से आई। 1943 में 'तार सप्तक' के रूप में कविता का प्रयोगात्मक रूप सामने आया। इससे पहले 1936 में कुछ ऐसे कवियों की बैठक हुई जो स्वयं को प्रगतिशील कहते थे। इसी बैठक में 'प्रगतिशील लेखक संघ' की स्थापना हुई। यहाँ प्रगतिशीलता और प्रगतिवाद के अंतर को समझना बहुत आवश्यक है। जो 'प्रगतिशील' है वह आस्तिक है, भारतीय संस्कृति में आस्था रखता है और इसके विपरीत जो स्वयं को 'प्रगतिवादी' कहता है वे मार्क्सवादी है। उनके लिए आस्तिकता, आस्था व परंपरा का कोई महत्त्व नहीं।

प्रगतिशील लेखक संघ की स्थापना के बाद जिन काव्यांदोलनों का जन्म हुआ उनको समझने के लिए यह आवश्यक है कि कवि/साहित्यकार और पाठक/श्रोता/दर्शक के मध्य स्थापित होने वाले संबंध और उसके महत्त्व को भली प्रकार समझा जाए। कविता से पाठक का जुड़ना 'साधारणीकरण' कहलाता है। यह साधारणीकरण कवि की प्रतिभा और उसके द्वारा प्रतिपादित विषय वस्तु की विशिष्टता पर निर्भर करता है। जैसे भाव पात्र अनुभव करता है वही भाव श्रोता/पाठक के मन में अनुभव करना और पाठक/श्रोता का कविता से जुड़ना काव्य की एक विशिष्ट प्रक्रिया है और यही जुड़ाव, साधारणीकरण है। क्या कारण है कि रामलीला देखते हुए सीताहरण या उनकी अग्नि परीक्षा के दृश्य के अवसर पर हमारी आँखों में आँसू आ जाते हैं? वास्तव में ऐसा इसलिए होता है कि हम स्वयं सीता से जुड़ जाते हैं। पात्र के साथ दर्शक/पाठक का यही जुड़ाव साहित्यकार व साहित्य के साथ जुड़ना है। तुलसीदास, सूरदास, कबीर, निराला व मैथिलीशरण गुप्त का पाठक से यही जुड़ाव उन्हें लोकप्रिय बनाता है।

नई कविता के नाम पर प्रारंभ हुए सभी काव्यांदोलनों

के कवियों में वैयक्तिक अनुभूति प्रमुख थी। उन पर प्रायः नकारात्मकता, व्यक्तिवादिता, अस्तित्वादिता, अस्वीकार्यता व जटिलता की प्रवृत्तियाँ हावी थी, इसी कारण उनका समाज से जुड़ाव नहीं हो सका। संप्रेषणीयता की कमी के कारण पाठक उसे समझ नहीं सके। वास्तव में उनका मकसद समाज या पाठक से जुड़ना नहीं, पाठक को अपनी बात समझाना नहीं था, वे तो यह मानकर चलते थे कि उसे जो कुछ कहना उसने वह कह दिया, इसे आप समझो या न समझो यह उसकी समस्या नहीं। यही कारण है कि इन काव्यांदोलनों के कई कवि जैसे–अजित कुमार, विनोद चौहान, मुद्राराक्षस, धूमिल, जगूड़ी, नरेश कुमार, मोनिका मोहिनी, मोना गुलाटी आदि ने जो रचा वह समाज तक नहीं पहुँच पाया और वे पाठक से नहीं जुड़ सके।

इस दौर के काव्यांदोलनों के कवियों पर नकारात्मकता और अस्वीकार्यता की प्रवृत्ति इतनी हावी है कि अपनी संस्कृति, इतिहास और पुरखों को भी नकारते हुए विजय चौहान कहते हैं–

हम किसी को अपना
पुरखा नहीं मानते!
हम एडिपस हैं
पितृघाती हैं
हमारा कोई अतीत नहीं।

आश्चर्य है कि इन आंदोलनों के कवियों को विद्रूपता भाती है और जिन्हें अपने पुरखे स्वीकार नहीं हैं उन्हें ग्रीक का एक ऐसा राजा 'एडिपस' स्वीकार्य है, जो अपने पिता की हत्या के लिए जाना जाता है। इसी प्रकार अशोक वाजपेयी कहते हैं–

''मेरे जन्म से पहले मर गई थी
देवताओं की बूढ़ी दुनिया।''

इस नकारात्मकता में इन्हें गर्व महसूस होता है। यहाँ अस्वीकृति केवल अस्वीकृति के लिए, विरोध केवल विरोध के लिए और आलोचना केवल आलोचना के लिए। इनका लेखन फ्रेंच, डेनिश व स्पेनिश कविता से प्रभावित है। जर्मनी का हेडेगर, फ्रॉयड, नीत्शे, सार्त्र, कामू जैसे विचित्र चिंतक इनके आदर्श हैं। इन कवियों पर गीता और रामायण जैसी किसी रचना का कोई असर नहीं होता, परंतु पिकासो जैसे कलाकारों के नग्नता के भाव इन पर हावी है। यही कारण है कि ये जीवन को निरर्थक मानते हैं। इन्होंने व्यर्थताबोध को महत्त्व दिया है। इनके लिए जीवन का कोई लक्ष्य नहीं है, इन कवियों को अहम् इतना प्रिय है कि समाज के प्रति ये अपना कोई दायित्व नहीं मानते। स्पष्ट है कि इस प्रकार के प्रदूषित लेखन से समाज की बहुत बड़ी क्षति होती है।

इससे स्पष्ट है कि नई कविता के ये काव्यांदोलन जहाँ अहंवादी और कुंठित मानसिकता के प्रतीक हैं, वहीं इसके विपरीत गोस्वामी तुलसीदास का लेखन 'स्वान्तः सुखाय' होते हुए भी 'सर्वजन सुखाय' है। लेकिन इन कवियों का स्वान्तः सुखाय सिर्फ इन तक ही सीमित है। भारतीय नाट्य शास्त्र में नाट्यमंचन के लिए कुछ नियम निर्धारित किए गए हैं, कुछ वर्जनाएँ हैं जिन्हें मंच पर नहीं दिखाया जाना चाहिए, लेकिन प्रयोगवाद की होड़ में ये कवि सारी वर्जनाएँ तोड़ देना चाहते हैं, इसीलिए इनके काव्यांदोलन हिंदी काव्य का कोई हित न साध सके।

भाषा की दृष्टि से इन कवियों ने बहुत ही भोंडी भाषा का प्रयोग किया। चाँद और कमल जैसे सांस्कृतिक प्रतीकों को नकार कर नए और भदेस प्रतीक गढ़ने में ही इन्होंने अपना कवित्व समझा। सामाजिकता की दृष्टि से छठे और सातवें दशक की ये कविताएँ बहुत ही दुर्भाग्यपूर्ण थीं। कविता में आई इस विकृति का मूल कारण है अपनी दार्शनिक परंपरा को नकार कर

आयातित विचारधारा को अपनाना। ऐसे कवियों को समाज ने हतोत्साहित किया।

इस अवसर पर सर्वश्री गजेंद्र सोलंकी, मनोज शर्मा, राकेश गंभीर, आनंद आदीश, जय प्रकाश 'विलक्षण' आदि ने अपने विचार व्यक्त किए। 'मंगल सृष्टि' के अध्यक्ष डॉ. बजरंग लाल गुप्ता ने अपने आशीर्वचन में कहा कि परुथी जी ने अपने विद्वतापूर्ण संबोधन में हिंदी काव्य में हुए सांस्कृतिक प्रदूषण की विशद् व्याख्या की है। साहित्य में आया किसी भी प्रकार का प्रदूषण समाज के लिए अहितकर ही होता है। किसी भी क्षेत्र में प्रदूषण तीन कारणों से आता है- पहला है भाव प्रदूषण- अगर आपका भाव ही नहीं ठीक होगा, तो ऐसी प्रदूषित व विकृत मानसिकता वाले कवियों की कविता अच्छी हो ही नहीं सकती। दूसरा है विचार प्रदूषण–अगर हम पर विकृत और असंस्कारी विचारों का प्रभाव होगा तो हमारे विचार भी उसी प्रकार प्रदूषित हो जाएंगे। और तीसरा है दृष्टि प्रदूषण–अगर किसी विषय के संबंध में हमारी दृष्टि संतुलित और संयमित नहीं है, तो उस विषय के संबंध में देखने का हमारा दृष्टिकोण गड़बड़ा जाता है। दुर्भाग्य की बात है कि आज समाज के विभिन्न क्षेत्रों में विकृतियाँ बढ़ गई हैं जो चिंता की बात है। समाज के प्रबुद्ध वर्ग को इस पर गंभीरता से चिंतन और मनन करना आवश्यक है। भारत की कालजयी और जीवन मूल्यों पर आधारित संस्कृति ही इन सब विकृतियों का समाधान कर सकती है।

डॉ. बजरंग लाल गुप्ता ने समाज को जागरूक बनाने के लिए आगे कहा आज यह बात सामान्य रूप से देखने में आती है कि हमारा स्वभाव धीरे-धीरे ऐसा होता जा रहा है कि हम किसी भी विषय पर बिना सोचे समझे कह देते हैं कि 'इससे मेरा क्या लेना-देना।' समाज से जुड़े हुए किसी भी विषय से विलगता की यह स्थिति बहुत ही घातक है। इस प्रकार की विकृति को दूर करने का एक ही तरीका है कि हम अच्छी बातों की प्रशंसा करें और जो खराब बात है उसका तिरस्कार करें। दुर्भाग्य की बात है कि हमारे समाज जीवन में अच्छी बात को पोषण नहीं मिल रहा है, जितनी मात्रा में पोषण मिलना चाहिए, वह नहीं मिल रहा है। इसका एक उदाहरण मै देता हूँ– 'आकाशवाणी' पर जब संस्कृत भाषा में समाचार प्रसारण होना शुरू हुआ तब हम दो-तीन व्यक्ति आकाशवाणी के निदेशक से मिलने गए। हमने उन्हें कहा कि आप ने यह एक अच्छी शुरुआत की है। इस पर निदेशक ने हमें बताया कि अब उन्हें यह कार्यक्रम शीघ्र ही बंद करना पड़ सकता है; क्योंकि इसको बंद कराने के लिए सैकड़ों फोन आ चुके हैं ; जबकि इसके समर्थन में पहली बार आप तीन व्यक्ति आए हैं। यह घटना इस बात का प्रमाण है कि जिन अच्छी बातों को हमें प्रोत्साहित करना चाहिए वह हम नहीं करते और इससे नकारात्मक बातें करने वालों को प्रोत्साहन मिलता है। आवश्कता इस बात की है कि अच्छी बातों को प्रोत्साहित किया जाए, समाज में सक्रिय हस्तक्षेप किया जाए और जो नकारात्मक बातें हैं उनको हतोत्साहित किया जाए। श्री वेद प्रकाश गुप्ता ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

स्नेहाकांक्षी
आदर्श गुप्ता
प्रबंध संपादक

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:49 PM Page 65

सहयोगी वृंद

1. **श्री सुरेश जैन**
बी-6/137-138, द्वितीय तल
सेक्टर-5, रोहिणी, दिल्ली - 110085

2. **श्री किशन लाल**
सी.बी-43 डी, सामने त्रिलोक भवन,
शालीमार बाग, दिल्ली- 110088

3. **श्री सुनील रोहिड़ा**
ए.डी.-90ए, शालीमार बाग,
नई दिल्ली - 110088

4. **श्री अनिल कुमार गुप्ता**
4/64, रूप नगर,
दिल्ली - 110 007

5. **श्रीमती पूजा मदनानी**
14/138, तृतीय तल, सुभाष नगर
नई दिल्ली - 110027

6. **श्री रजनीश**
सी- 2/126, सेक्टर -5,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

7. **श्री राजेश गुप्ता**
सी-7/116 सेक्टर-5
रोहिणी, दिल्ली - 110085

8. **श्री पवन जैन**
सी-18, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली -110085

9. **श्री राजेन्द्र प्रसाद जैन**
सी-11/165-166, सेक्टर-3,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

10. **श्री अविनाश मंगल**
ए-2/20, सेक्टर-5
रोहिणी, दिल्ली - 110085

11. **श्रीमती श्रेया**
ए-2/99, सेक्टर-5, रोहिणी
दिल्ली - 10085

12. **श्री अनिल जैन**
ए-1/150, सेक्टर-6, रोहिणी
दिल्ली-110085

13. **श्री राजीव महेश्वरी**
बी-2/123-124, सेक्टर-6,
रोहिणी, दिल्ली - 110085

MV_April _ 2019 final for printing:Layout 1 3/28/2019 1:50 PM Page 66

मंगल विमर्श
सदस्यता -प्रपत्र

मंगल विमर्श — **त्रैमासिक पत्रिका**

मुख्य संरक्षक
डॉ. बजरंग लाल गुप्ता

प्रधान संपादक
ओमीश परुथी

संयुक्त संपादक
डॉ. रवींद्र अग्रवाल

प्रबंध संपादक
आदर्श गुप्ता

सदस्यता -शुल्क

10 वर्षों के लिए ₹2000 मात्र

मंगल विमर्श की........................... वर्षों की सदस्यता हेतु.......................................

रुपये का ड्राफ्ट/चैक क्रं. .... दिनांक..

बैंक.. भेज रहे हैं,

कृपया.. वार्षिक सदस्य बनाने का कष्ट करें।

नाम..

पता..

....

.... पिनकोड ....

फोन :.................................... मोबाइलः...

इ-मेल...

पत्रिका सदस्यता शुल्क हेतु
मंगल सृष्टि (Mangal Srushti)
के नाम चैक/ड्राफ्ट सी-84, अहिंसा विहार,
सेक्टर-9, रोहिणी, दिल्ली- 110085 पर भेजें।
फोन नं. +91-9811166215,
+91-11-27565018
+91-11-42633513

इ-मेल mangalvimarsh@gmail.com **वेब साइट** www.mangalvimarsh.in